हिन्दी-प

संस्कृत प्रथमा परीक्षार्थियों के लिए
संयुक्त प्रान्तीय संस्कृत शिक्षाबोर्ड
के द्वारा स्वीकृत ।

संपादक—
पं० चन्द्रधर हस्सर एम. ए., एल् एल्. बी

प्रकाशक—
नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
चौक, बनारस ।

(प्रथमावृत्ति ५०००) १९३७ (मूल्य ।≈)

प्रकाशक—
नन्दकिशोर भार्गव
प्रोप्राइटर
नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स
चौक, बनारस।



मुद्रक—
कृ० च० पावगी
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

विषय-सूची

हिन्दी-पाठमाला

१—ईश-वन्दना

(१)

हे नाथ ! हे प्रभु ! महा महिमा तुम्हारी,
वाणी नहीं कह सुना सकती हमारी।
सौ वर्ष भी यदि सदा तव कीर्त्ति गावें,
तो भी कभी न उसके हम पार जावें॥

(२)

पृथ्वी, पहाड़, नद, पेड, समुद्र सारे,
हैं ये समस्त जगदीश ! दिये तुम्हारे।
हे ईश ! आप यदि सूर्य हमें न देते,
तो जीव-जन्तु जग में न कदापि जीते॥

(३)

ये जो अनेक फल हैं जग में दिखाते,
खाते नहीं हम कभी जिनको अघाते।
देते न जो तुम हमें जगदीश आँखें,
पाते उन्हें न, करते यदि यत्न लाख॥

(४)

हे हे दयामय प्रभो, कर जोड़ते हैं,
सारी कुचाल अब से हम छोड़ते हैं।
जो भूल-चूक परमेश्वर हो हमारी,
कीजे क्षमा शरण में हम हैं तुम्हारी ॥

प्रश्न

1— अपनी भाषा में ईश्वर की महिमा का वर्णन करो।

२–शिष्टाचार

सच पूछो तो किसी मनुष्य की विद्या, बुद्धि और योग्यता का पता उसकी बातचीत से ही चल जाता है, इसलिये हमें बड़ी सावधानी से बातचीत करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जीवन की सफलता और असफलता बहुत कुछ बातचीत के ढंग पर भी निर्भर है। एक मीठा बोलनेवाले मनुष्य से लोग बिना कारण ही प्रेम और कड़वा बोलनेवाले से घृणा करने लगते हैं। अतः हमें शिष्टाचार की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

किसी मनुष्य की सब से अच्छी पहचान उस व्यवहार से हो सकती है जो वह अपने नौकर-चाकरों, अधीनों और दीन-

दूसरों से असभ्य व्यवहार किया करते हैं। उत्कृष्ट विचारों के मनुष्य छोटे-से-छोटे मनुष्य के साथ भी नम्रता का व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि लोगों की दृष्टि में उनका मान दिन-दिन बढ़ने लगता है। इसके विपरीत जो मनुष्य बिना कारण ही दूसरों से असभ्य व्यवहार करते हैं उन्हें दूसरे लोग असभ्य और फूहर के नाम से पुकारने लगते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि शिष्टाचार से ससार के कामों में एक निराला सौन्दर्य और सरलता आ जाती है, मनुष्य अधिक उपयोगी बन जाता है और यही शिष्टाचार मनुष्य के गुणों में 'सोने में सुगन्ध' का सा काम देता है। इसलिये शिष्टाचार-सम्बन्धी कुछ मोटी मोटी बातों का लिख देना उपयुक्त सिद्ध होगा।

बातचीत करते समय 'श्रीमान्', 'आप' और 'तुम' शब्द का उचित प्रयोग करने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। पदवी तथा योग्यता में अपने से बहुत बड़े आदमी के लिये 'श्रीमान्' और साधारणतया हर एक बड़े आदमी और बराबरवालों के लिये 'आप', बराबरवाले बड़े ही घनिष्ठ मित्रों और छोटे लोगों और बालकों के लिये 'तुम' शब्दों का प्रयोग करना शिष्टाचार के अनुकूल है। किसी प्रश्न का उत्तर देते समय केवल 'हाँ' या 'नहीं' कहना शिष्टाचार के विरुद्ध है। हमेशा 'जी हाँ' या 'जी नहीं' कहकर उत्तर देना चाहिये। यदि किसी आदमी का नाम या रहने का स्थान पूछना हो तो 'आपका शुभ नाम,' 'आपका शुभ स्थान' वाक्यांशों का प्रयोग करना चाहिये।

बातचीत करते समय मनुष्य को अपनी ही बातो

न लगा देनी चाहिये, वरन् दूसरे लोगों को भी बोलने का अवसर देना चाहिये। ऐसा न करने से दूसरे लोग उकताकर पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त बातचीत में दूसरे का वेतन, वश-व्यवसाय इत्यादि ऐसी बातें जिनके बताने में किसी मनुष्य को हिचकिचाहट हो सकती है, पूछने का आग्रह भी न करना चाहिये।

जहाँ कुछ लोगों का जमघट हो वहाँ व्यर्थ में अपनी योग्यता दिखाने का उद्योग करना अभिमान समझा जाता है। हमने यहाँ तक देखा है कि बहुत से लोग केवल अपनी योग्यता दिखाने के लिये ही अशुद्ध शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। उनकी इस अनूठी योग्यता पर बैठे हुए लोग मन-ही-मन हँसते हैं और कभी-कभी तो ऐसे मनुष्य को मूर्ख जताने का उद्योग करने लगते हैं। यदि लोग बहुत ही आग्रह करें तो अपनी योग्यता के अनुसार कुछ कहने में लज्जा भी न करनी चाहिये, परन्तु ऐसे अवसर पर बातचीत का विषय चुनने मे बड़ी सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है। बालकों और नवयुवकों के सामने खेल और वीरता की बातों को छोड़कर वैराग्य की बातें करना और वृद्धों के सम्मुख शृङ्गार की बातें करना मूर्खता नहीं तो क्या बुद्धिमानी है?

दो मनुष्यों की बात काटकर बीच ही में बोल उठना, रास्ते में दूसरे मनुष्य के हाथ में हाथ डालकर या कधे पर हाथ रख कर चलना, किसी मनुष्य से चलते-चलते पीछे से बातें करना, बड़ों के सम्मुख पान चबाकर, खुले बटन या कपड़े सँभालकर

न जाना, ढीले-ढाले खडे होना, पाँव पसारकर बैठना अथवा किये गये प्रश्न का उत्तर न देकर चुपचाप खडे रहना आदि सभी बातें शिष्टाचार के विरुद्ध हैं।

बालकों को बचपन से ही शिष्टाचार-सम्बन्धी बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये, जिससे वे बचपन में सदाचारी बालक और यौवन में सुयोग्य नागरिक बन सकें।

प्रश्न

१—शिष्टाचार से क्या तात्पर्य है ?

२—अपने से बड़े आदमी के लिये कैसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिये ?

३—दो आदमियों के बीच में बोलना क्यों अच्छा नहीं समझा जाता ?

२—ऋतु-वर्णन

(रामायण से)

१ वर्षा

वर्षाकाल मेघ नभ छाये,
गरजत लागत परम सुहाये।
दामिनि दमक रही घन माहीं,
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं॥

वर्षहिं जलद भूमि नियराये;
यथा नवहिं बुध विद्या पाये।
बूँद अघात सहैं गिरि कैसे,
खल के बचन सन्त सह जैसे ॥

क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई,
जस थोरे धन खल बौराई।
भूमि परत भा डाबर पानी,
जिमि जीवहि माया लपटानी ॥

सिमिट सिमिट जल भरे तलावा,
जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा।
सरिता-जल जलनिधि महँ जाई,
होइ अचल जिमि जन हरि पाई ॥

दादुर धुनि चहुँओर सुहाई,
वेद पढ़ें जिमि बटु-समुदाई।
नव पल्लव भे विटप अनेका,
साधु के मन जस होय विवेका ॥

अर्क, जवास पात बिनु भयऊ;
जिमि सुराज्य खल-उद्यम गयऊ।
खोजत पन्थ मिलै नहि धूरी,
करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥

ससं-सम्पन्न सोह महि कैसी,
उपकारी की सम्पति जैसी।
निशि-तम घन खद्योत विराजा;
जनु दम्भिन कर जुरा समाजा॥

कृषी निरावहिं चतुर किसाना,
जिमि बुध तजहिं मोह-मद-माना।
विविध-जन्तु-सुङ्कुल महि भ्राजा,
बढ़े प्रजा जिमि पाय सुराजा॥

कबहुँ दिवस महँ निविड तम, कबहुँक प्रगट पतङ्ग
उपजै विनसै ज्ञान जिमि, पाइ सुसङ्ग कुसङ्ग॥

प्रश्न

१—अपनी सरल भाषा में वर्षा ऋतु पर एक निबन्ध लिखो।

२—"यथा नवहि बुध विद्या पाये"—इस आशय का संस्कृत का कोई श्लोक बताओ।

३—क्रोध से धर्म कैसे दूर हो जाता है?

४—स्वामी शंकराचार्य

कई सौ वर्ष हुए दक्षिण देश में एक ब्राह्मण रहते थे। वे बड़े पंडित और ज्ञानी थे। उनकी स्त्री का नाम कामाक्षी था। कामाक्षी भी पति की तरह पंडिता थीं। दोनों का जीवन बड़े सुख से बीत रहा था।

बहुत दिन बीत जाने पर भी उन्हें कोई सन्तान न हुई। संतान के लिये दोनों शिव का व्रत करने लगे। व्रत का फल मिला, एक लड़का पैदा हुआ। भगवान शंकर की दया से उत्पन्न होने के कारण लड़के का नाम शंकर रखा गया।

शंकर की बुद्धि बड़ी तेज थी। उन्होंने आठ साल की ही अवस्था में बड़े-बड़े विषयों पर विचार करना सीख लिया। इसी समय इनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के मरने से बालक शंकर के चित्त पर बड़ी चोट लगी। वे संसार से खिन्न रहने लगे। कभी-कभी घर-गाँव के बाहर चले जाते और घंटों संसार पर मन-ही-मन विचार किया करते थे। वे अपने विचारों में ऐसे भूल जाते कि अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रह जाता था।

इससे कामाक्षी को बड़ी चिंता हुई। वे शंकर को भोग-विलास में फँसाने का यत्न करने लगीं, पर शंकर के चित्त पर कुछ भी असर न हुआ। फिर भी वे माता की आज्ञा के बिना घर न छोड़ना चाहते थे।

एक दिन शंकर को माता के साथ एक दूसरे गाँव में जाना

पडा। रास्ते में एक नदी मिली। नदी में पानी कम था। माँ-बेटे नदी में उतर पडे, पर जब बीच मे पहुँचे तो नदी का पानी बढ आया। दोनों डूबने लगे। इसी समय शकर ने यह देववाणी सुनी—'यदि शकर सन्यासी हो जाय तो नदी का पानी घट सकता है।' शकर ने देववाणी माता को सुना दी। माता रोने लगी। सामने मौत के सिवाय कोई उपाय न देखकर माता ने उन्हे सन्यास लेने की आज्ञा दे दी।

शकर घर से अलग होकर गोविंदपाद के अश्राम में गये। आश्रम में रखने से पहले गोविंदपाद ने उनसे कई प्रश्न पूछे। शंकर ने उनके प्रश्नों का जवाब देकर उन्हे अचभे में डाल दिया। गोविंदपाद ने उन्हे अपने पास रख लिया। उनके आश्रम मे रहकर वे योग और कर्म की शिक्षा पाने लगे।

थोडे ही दिनो मे शकर पूरे पडित हो गये। इनकी पडिताई को देखकर इनके गुरु को भी आश्चर्य होने लगा। इनका योग ध्यान भी बढ़ा-चढा था। जब ये ध्यान लगाकर बैठते तो इन्हे किसी की सुध न रह जाती थी।

विद्या और योग के पूरे पडित बनकर शकर ने सन्यास लिया और स्वामी शकराचार्य कहलाने लगे। उस समय सारे भारत में बौद्ध धर्म की तूती बोल रही थी। इनके गुरु ने इन्हे आज्ञा दी कि देश में घूम-घूमकर अपने ज्ञान का प्रचार करो और बौद्ध धर्म की जगह पर सनातन वैदिक धर्म की धूम मचा दो।

गुरु की आज्ञा मानकर स्वामी शकराचार्य निकल पड़े। उन्होंने सारे देश में वैदिक धर्म का डंका बजा दिया। बौद्ध

पंडित घबडाये। जगह-जगह इनसे बौद्ध पंडितों का वादविवाद (शास्त्रार्थ) हुआ। पर कोई इनके सामने न टिका। ये जहाँ जहाँ जाते, सब को मुँह की खानी पड़ती। सारे देश में इनके नाम का डका बजने लगा।

सारे भारतवर्ष में सनातन-धर्म का झडा फहराते हुए माहिष्मती नगरी में पहुँचे। इस नगरी में मडन मिश्र नाम के एक बडे पडित रहते थे। जब शकराचार्य उनके पास पहुँचे तो वे इनके मुख के तेज को देखकर अचरज में पड गये। फिर दोनों में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। यह तै हुआ कि जो हारे वह जीतनेवाले का चेला बन जाय। निर्णय करने के लिये मडन मिश्र की स्त्री भारती पच बनी। यह भी बडी पडिता थी। इसी से पता चलता है कि भारत में उस समय स्त्री-शिक्षा का कैसा प्रचार था।

शास्त्रार्थ होने लगा। मडन मिश्र हार गये। तब भारती ने स्वामी शकर से कहा—"जब तक आप मुझे न हरा लें तबतक आपकी जीत नहीं मानी जा सकती, क्योंकि स्त्री पति का अर्धांग होती है"। शकराचार्य शास्त्रार्थ करने लगे। पर भारती के प्रश्नों का उत्तर उस समय न दे सके। उन्होंने एक वर्ष का समय माँगा और एक वर्ष के बाद उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। फिर क्या था, मडन और मडन की स्त्री दोनों इनके चेले बन गये।

स्वामी शकराचार्य ने थोडे ही दिनों में चारों ओर भारत में वैदिक धर्म का झडा खड़ा कर दिया। इससे वाम-मार्गी और बौद्ध धर्मवाले इनके विरोधी हो गये। शकराचार्य ने इनका

उत्तर देने और वैदिक धर्म [illegible]
किये। इनके चारों मठ [illegible]
में जोशीमठ, जगन्नाथपुरी में [illegible]
दक्षिण में शृङ्गेरीमठ और [illegible]
वे स्वयं रहे। ये मठ आज भी [illegible]
रहे हैं। इन मठों का देश में [illegible]
अधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य [illegible]

शंकर स्वामी बदरिकाश्रम [illegible]
में ही उनका देहान्त हो गया।

प्रश्न

१—अपनी भाषा में स्वामी शंकराचार्य [illegible]

२—स्वामी शंकराचार्य को वैराग्य [illegible]

३—उन्होंने कौन से ऐसे बड़े कार्य [illegible] है ?

४—वैदिक सनातन-धर्म किसका [illegible]

५—भीष्म-प्रतिज्ञा

एक दिन राजा शान्तनु यमुना के किनारे घूम रहे [illegible]
अचानक एक अद्भुत सुगन्ध आयी। [illegible] सुगन्ध राजा [illegible]
पहले कभी नहीं पायी थी। वे सोचने [illegible] कि यह मनोहर [illegible]
कहाँ से आ रही है। खोज करने [illegible] मालूम

देवरूप-धारिणी एक धीवर की कन्या के बदन की सुगन्ध है। इस पर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस मल्लाह की कन्या से पूछा—

हे सुन्दरी। तुम कौन हो ? किस लिये तुम यहाँ आयी हो, यहाँ पर तुम क्या करती हो ?

कन्या ने उत्तर दिया—

महाराज। मैं एक धीवर की कन्या हूँ। मेरा नाम सत्यवती है। मैं पिता की आज्ञा से इस घाट पर नाव चलाया करती हूँ।

इस कन्या के अद्भुत रूप और आश्चर्यकारक सुवास पर राजा शान्तनु मोहित हो गये। उसके साथ विवाह करने की उन्हे प्रवल इच्छा हुई। इससे वे उसके पिता के पास गये और अपने मन की बात उससे कही।

धीवर बोला—हे नरनाथ! हे महाराज! कन्या हुई है तो उसका विवाह करना ही पडेगा। आप राजा होकर भी उसके पाने की इच्छा रखते हैं, यह मेरे लिये बडे आनन्द की बात है। इससे अधिक सन्तोष और सुख की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है ? परन्तु मेरे मन में एक अभिलाषा है, उसे पूरा करने के लिये आपको 'हाँ' करना होगा। इस कन्या का विवाह आपके साथ होने पर इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी को राज्य का अधिकारी आपको बनाना होगा। आपको यह प्रण करना होगा कि आपके पीछे आपका राज्य सत्यवती के ही पुत्र को मिलेगा और किसी को नहीं।

राजा शान्तनु अपने पुत्र देवव्रत को इतना प्यार करते थे कि धीवर की इस बात को स्वीकार करने मे समर्थ न हुए। बहुत दु खित होकर वे अपनी राजधानी हस्तिनापुर को लौट आये, परन्तु सत्यवती उन्हे नहीं भूली। उसके लिये वे बहुत उदास रहा करते थे।

पिता की यह दशा देखकर महात्मा देवव्रत को बडी चिन्ता हुई। मन्त्री से पिता के दु ख का सारा हाल सुनकर देवव्रत ने उनकी इच्छा पूर्ण करने का दृढ सकल्प किया और उसी क्षण वे धीवर के पास पहुँचे।

धीवर ने राजकुमार देवव्रत से आने का कारण पूछा। उन्होंने सब बातें उसे कह सुनायीं। धीवर ने कुमार को बडे आदर से आसन पर बैठाया और उनके साथ जितने राज-पुरुष आये थे सब के सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

हे राजकुलदीपक। आप शस्त्र धारण करनेवालों में सब से श्रेष्ठ और राजा शान्तनु के इकलौते पुत्र हैं। सब बातें आप के ही हाथ में हैं। इससे मैं सारी कथा आपसे कहता हूँ, सुनिये। देखिये, आपके साथ सम्बन्ध छोडने की इच्छा मैं तो क्या, स्वय इन्द्र भी नहीं कर सकते। महर्षि पराशर ने इस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा बार-बार मुझ पर प्रकट की है। परन्तु राजा के साथ सम्बन्ध करना ही मैंने इसके लिये अच्छा समझा। इससे मैंने महर्षि पराशर की बात नहीं मानी। परन्तु हे राजकुमार। इसके साथ विवाह करने से इसकी सन्तान के कारण आपके राज्य में घोर शत्रुता और विद्रोह होने का डर

है। जिसके आप सौतेले भाई होंगे—जिसके साथ आपक वैरभाव होगा—उसकी क्या कभी रक्षा हो सकती है? उसक कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस विवाह में यही एक दोष है और कुछ नहीं। इस दशा में मैं कन्यादान कर सकता हूँ या नहीं इसका विचार आप ही कर दीजिये।

महात्मा देवव्रत धीवर का मतलब समझ गये। उन्हे अपने सुख की अपेक्षा पिता के ही सुख का अधिक ध्यान था अतएव अपने स्वार्थ की—अपने सुख की—उन्होंने कुछ भी परवा न की। वे उसे छोडने के लिये तत्काल तैयार हो गये। उन्होंने कहा—

हे धीवर-श्रेष्ठ। डर का कोई कारण नहीं। तुम बिल्कुल न डरो, हमने तुम्हारे मन की बात जान ली है। हमे तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना सब तरह स्वीकार है। तुहारी कन्या के जो पुत्र होगा वही इस राज्य का स्वामी होगा, उसीको वह राज्य मिलेगा।

यह सुनकर धीवर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—

हे शत्रुओं के नाश करनेवाले! यदि आप मुझ पर क्रोध न करें तो मैं और भी एक बात आप से कहूँ। संसार में सब लोग इस बात को जानते है कि आप सत्यवादी हैं, आप सदा सत्य ही बोलते हैं। जब आपने सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा की है तब उस विषय में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु यदि आगे किसी समय आपका कोई वशज आपकी प्रतिज्ञा को न माने और उसके विपरीत काम करे तो उसका क्या उपाय होगा?

तब महात्मा देवव्रत ने पिता के सुख को सर्वोपरि समझ, वहाँ पर जितने क्षत्रिय उपस्थित थे सब को सुनाकर ये वचन कहे—

हे धीवर-राज ! हमारी सत्य-प्रतिज्ञा सुनो ! हम जो सत्य-व्रत करने जाते हैं, उसे श्रवण करो। हम पहले ही राज्य के अधिकार से हाथ खींच चुके हैं। हमने पहले ही कह दिया है कि हम सत्यवती के पुत्र को राजा बनावेंगे। अब हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम विवाह भी न करेंगे। आज से जन्म भर हम ब्रह्मचर्य्य धारण करेंगे। इससे सत्यवती के पुत्र को राज्याधिकार मे हटाने का कुछ भी डर न रह जायगा। उसे राज्य प्राप्त करने में कोई बाधा न आ सकेगी।

देवव्रत ने अपने स्वार्थ पर इस तरह पानी फेर दिया। उन्होंने उदारता की हद कर दी। उन्होंने राज-पाट भी छोड़ दिया और जन्म भर अविवाहित रहने का प्रण भी किया। उनकी इस विकट प्रतिज्ञा को सुनकर सब लोग धन्य ! धन्य ! कहने लगे और स्वर्ग से देवता फूल बरसाने लगे। ऐसा भीष्म प्रण करने के कारण उस समय से सब लोग देवव्रत को 'भीष्म' कहने लगे। तभी से उनका नाम भीष्म पड़ा।

उस धीवर का अभिलाप पूर्ण हुआ। जो बात वह चाहता था, वह हो गयी। इससे उसे बड़ा आनन्द हुआ। शान्तनु के साथ अपनी कन्या का विवाह करना उसने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया।

इसके बाद राजा शान्तनु के साथ सत्यवती का विवाह हो

गया और उन्होंने अपने सत्यवादी पुत्र देवव्रत की भीषण प्रतिज्ञा से प्रसन्न होकर पुत्र को यह वरदान दिया कि तुम्हे इच्छा-मृत्यु प्राप्त हो—इच्छा से ही तुम्हारी मृत्यु हो, अर्थात् यदि तुम अपने मन से न मरना चाहो तो मृत्यु का तुम पर कुछ भी जोर न चले। अन्त मे ऐसा ही हुआ। धर्मात्माओं की बातें व्यर्थ नहीं होतीं। भीष्म ने अपना प्रण निभाया और महाभारत के बाद अपनी इच्छा से शरीर छोड़ा।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रश्न

१—भीष्म के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है ?

२—इच्छा-मृत्यु किसको कहते हैं ?

३—देवव्रत का नाम भीष्म क्यों पड़ा ? उनकी प्रतिज्ञा में क्या उदारता थी ?

४—भीष्म का जीवन संक्षेप में लिखो।

६—भ्रातृ-भक्त भरत

रामादपि हितं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्

भरत रामचन्द्रजी से अत्यन्त प्रेम करते थे। वह उन्हे भाई नहीं, बल्कि पिता के समान पूज्य मानते और वैसा ही उनके साथ बर्ताव भी करते थे। महाराज दशरथ का स्वर्गवास होने पर गुरु वसिष्ठजी तथा मन्त्रियों ने भरतजी को ननिहाल

से बुलाया। जब से अयोध्या में अनर्थों और उत्पातों का आरम्भ हुआ तब से ननिहाल मे भरतजी भी नित्य बुरे-बुरे स्वप्न देखते थे। दिन में भी उन्हे अनेक अमगल-सूचक अशुभ शकुन दिखायी देते, जिनके कारण भरतजी अत्यधिक चिन्तित रहते थे। इन दु स्वप्नों की शान्ति के लिये भरत ने अनेक दान-पुण्य और पूजा-पाठ की व्यवस्था की, परन्तु फिर भी उनके चित्त को सन्तोष न हुआ।

भरतजी इन्हीं चिन्ताओं में निमग्न बैठे थे कि अयोध्या से गुरु वसिष्ठजी का भेजा हुआ दूत उनके पास आ पहुँचा। भरत ने दूत से अनेक बातें पूछीं, परन्तु उसने केवल इतना ही कहा कि आपको गुरुजी ने शीघ्र बुलाया है। गुरुजी का सन्देश पाते ही भरतजी तुरन्त अयोध्या को चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पुरी तथा पुरजनों की जो अवस्था देखी, उससे उन्हें किसी भारी अमगल की आशका होने लगी। ज्यों-त्यों कर भरत राजमहल में पहुँचे। वहाँ सर्व प्रथम उनकी कैकेयी से भेंट हुई। कैकेयी ने अपने पीहर के कुशल-समाचार पूछे, जिनका भरतजी ने उचित उत्तर दिया। फिर भरतजी ने अपने परिवार का कुशल-क्षेम पूछते हुए प्रश्न किया कि महाराज और रामचन्द्रजी कहाँ हैं?

अपने प्रश्न के उत्तर मे भरतजी ने सीता और लक्ष्मण सहित राम के वन जाने और उनके वियोग से महाराज के प्राण त्यागने की बात सुनी तो वह एक साथ भौंचक्के से रह गये। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश से भूमि पर आ गिरे हों। यह संवाद सुनकर भरतजी के दु ख और शोक का ठिकाना न

पालन करो। हे वत्स, मैं जानती हूँ, रामजी तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। राम भी तुम से बड़ा स्नेह करते हैं। चाहे चन्द्रमा विष बरसाने लगे और मेघमाला से अगारे गिरने लगें, पर तुम कभी राम के प्रतिकूल नहीं हो सकते।" इसी समय वसिष्ठ आदि मुनि तथा मन्त्री लोग भी भरतजी के पास आये और उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया।

फिर भरतजी ने पिता की विधिपूर्वक अन्त्येष्टि क्रिया की। सब कामों से निवृत्त हो जाने पर वसिष्ठजी, मन्त्रियों और दूसरे वृद्धजनों ने भरतजी से राजसिंहासन पर बैठकर राजकाज करने का आग्रह किया, परन्तु भरतजी उसके लिये तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा—"यह सिंहासन रामचन्द्रजी का है, उनका एक तुच्छ सेवक होकर मैं इस पर कैसे बैठ सकता हूँ। मेरा तो विचार है कि आप सब लोगों सहित मैं रामचन्द्रजी को मनाने और लौटाने चलूँ। हम लोगों की प्रार्थना पर यदि वे लौट आये तो बड़ा अच्छा होगा, नहीं तो मैं भी चौदह वर्ष तक वन ही में रहूँगा। सीताजी और राम लक्ष्मण तो वल्कल वस्त्र धारण करें, कन्द-मूल फल खायें, वन-वन विचरें और मैं राजसुख भोगूँ, यह कैसे हो सकता है।"

दूसरे ही दिन भरतजी पुरजन तथा परिजनों सहित रामचन्द्रजी को मनाने के लिये चल दिये। भरतजी ने प्रण किया कि जब तक रामचन्द्रजी के दर्शन न कर लूँगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। साथ ही उन्होंने राजोचित वस्त्र उतार रामचन्द्र के से वल्कल-वसन धारण कर लिये। इस प्रकार नगे पैरों पैदल

चलकर भरतजी चित्रकूट पहुँचे। वहाँ जब लक्ष्मण ने सेना सहित भरतजी के आने की बात सुनी तो उन्हें बड़ा सन्देह होने लगा। परन्तु रामचन्द्र ने लक्ष्मण को समझाया कि भले ही सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से उदय होने लगे, परन्तु हमारे साथ भरत का दुर्भाव कदापि नहीं हो सकता।

रामचन्द्रजी लक्ष्मण को समझा ही रहे थे कि इतने मे ही भरतजी आ पहुँचे और आते ही रामचन्द्रजी के पैरो पर गिर पडे। राम ने भरत को हृदय से लगा लिया। भरतजी ने रोते-रोते पिता के स्वर्गवास की बात सुनायी, जिसे सुनकर रामचन्द्र को भी अत्यन्त दु ख हुआ। परन्तु फिर उन्होंने भरतजी तथा माताओं और अन्य पुरवासियों को समझा-बुझाकर शान्त किया। भरत ने रामचन्द्र से अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना की, परन्तु इसे उन्होंने स्वीकार न किया। जब भरतजी राम को लौटा ले जाने में सर्वथा असमर्थ हुए तब उन्होंने भूखों रहकर वहीं प्राण दे देने का निश्चय किया। अब तो राम बडी दुविधा में पडे। यदि अयोध्या लौटते हैं तो पिता की आज्ञा भंग होती है और नहीं लौटते तो भाई के प्राण-नाश का भय है। करे तो क्या करें।

अन्त मे बहुत सोच विचार के बाद रामचन्द्रजी ने निश्चित किया कि मैं तो चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण हुए बिना लौट नहीं सकता। हाँ, आप मेरी खड़ाऊँ ले जाकर राजसिंहासन पर स्थापित कर लें। भरत रामचन्द्रजी की इस बात से सहमत हो गये और आदरपूर्वक रामजी की पादुका सिर पर रख अयोध्या लौट आये।

शिवाजी जब बड़े हुए तो वे पहाड़ी लोगों का दल जु॰ कर इधर-उधर लूट-मार करने लगे। कोण्डदेव उन्हें रोकने॰ कोशिश करते थे, पर वे मानते न थे। धीरे-धीरे उनका साहस चढ़ता गया। वे बीजापुर राज्य की सीमा पर भी उत्पात म॰ लगे। एक बार उन्होंने बीजापुर के सुलतान की मालगुजारी तक लूट ली थी। सुलतान बहुत डरा। उसने इनके पिता शाहजी को कैद कर लिया। पर शिवाजी ने बादशाह शाहजहाँ की मदद से अपने पिता को छुड़ा लिया।

इसके बाद शिवाजी ने जावली के राजा पर चढ़ाई कर दी। जावली का राजा बीजापुर के बादशाह का साथी था। इस लिये बीजापुर के बादशाह ने एक बड़ी भारी सेना अफजलखाँ के साथ सहायता के लिये भेजी। अफ़जलखाँ ने धोखा देकर शिवाजी को मारना चाहा। पर शिवाजी की चालाकी के सामने उसकी एक न चली। वह खुद मारा गया। शिवाजी ने बीजापुर के बादशाह को हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

उन दिनों दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब राज्य कर रहा था। वह शिवाजी की इस जीत से बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सेनापति शाइस्ताखाँ को शिवाजी को दबाने के लिये भेजा। पर पूना के किले में शिवाजी ने उसे घेर लिया। शाइस्ता खाँ बड़ी कठिनता से जान बचाकर खिड़कियों की राह से भागा। लेकिन फिर भी शिवाजी ने उसके हाथ की दो उँगलियाँ काट लीं। औरंगजेब इससे बहुत डरा। उसने दूसरी बार जयसिंह को शिवाजी के मुकाबिले में भेजा।



वीर शिवाजी



राजा जयसिंह और शिवाजी में अच्छी मुठभेड हुई। अन्त
में दोनों में सधि हो गयी। राजा जयसिंह ने प्रयत्न करके शिवाजी
को आगरे के दरबार मे भेजा। वहाँ शिवाजी का अपमान किया
गया। शिवाजी इस अपमान को न सह सके और बादशाह को
बुरी तरह फटकार सुनाकर दरबार से लौट आये।

परन्तु आगरे की राजधानी के बाहर निकलना कठिन
काम था। उन पर चारो ओर से पहरा पड़ रहा था। वे क़ैदी
की तरह क़िले में रखे जाते थे। अत में मिठाई की टोकरी मे
छिपकर बड़ी चतुराई से शिवाजी वहाँ से भाग निकले। नौ
महीने के बाद शिवाजी जब अपने देश को आये तो उनका
हृदय फिर उत्साह से भर गया।

आगरे से लौटकर शिवाजी ने फिर लड़ाई का डका बजा
दिया। औरगजेब भी कब चुप रहकर बैठनेवाला था। उसने
शिवाजी को दबाने के लिये एक बडी भारी सेना भेजी। लेकिन
इस बार मुगलों की हार हुई। वे कई जगह बडी बुरी तरह से
लूटे-खसोटे गये। इसी समय शिवाजी का राजतिलक हुआ
और उन्होंने छत्रपति की उपाधि धारण की।

मरहठो में इस समय बल भी अधिक था। मुगल बार बार
चढाई करते थे, पर हार जाते थे। शिवाजी का तेज सारे देश
मे फैल गया। बीजापुर और गोलकुडा आदि मुसलमानी राज्यों
को बुरी तरह नीचा देखना पडा। शिवाजी कई मुसलमान
हाकिमों से कर भी वसूल करने लगे। सारे दक्खिन में उनके
नाम की तूती बोलने लगी।

अत में ६० वर्ष की अवस्था मे महाराज शिवाजी इस दुनिया से चल बसे। वे गौ और ब्राह्मणों के बडे सेवक थे दूसरे की स्त्रियों को माता की तरह मानते थे। उनके ये गुण ही उन्हें आज समस्त संसार में अमर बनाये हुए हैं।

"वेद राखे विदित, पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे मे जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥
मीडि राखे मुगल मरोरि राखे पातसाह,
वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥"

—भूषण

प्रश्न

१—शिवाजी की जीवनी अपनी भाषा में लिखो।

२—इनकी माता ने इन्हें क्या शिक्षा दी थी और उसका इन पर क्या प्रभाव पड़ा?

३—इनमें क्या विशेष गुण थे, जिससे लोग इनको इतना मानते हैं?

८—शरद्-वर्णन

वर्षा विगत शरद ऋतु आई,
लक्ष्मण देखहु परम सुहाई ।
फूले काँस सकल महि छाई,
जनु वर्षाकृत प्रगट बुढाई ॥

उदित अगस्त पन्थ जल सोखा,
जिमि लोभहि सोखे सतोषा ।
सरिता सर निर्मल जल सोहा,
सन्त हृदय जस गत मद मोहा ॥

रस-रस सूख सरित सर पानी,
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ।
जानि शरद ऋतु खञ्जन आये,
पाय समय जिमि सुकृत सुहाये ॥

पङ्क न रेणु सोह अस धरनी,
नीति निपुण नृप की जस करनी ।
जल सङ्कोच विकल भये मीना,
विविध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥

बिन घन निर्मल सोह अकाशा,
जिमि हरिजन परिहरि सब आशा ।

कहुँ-कहुँ वृष्टि शारदी थोरी,
कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी ॥

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ।
जिमि हरिभक्तहि पाइ जन, तजहि आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा,
जिमि हरि-शरण न एकौ बाधा ।
फूले कमल सोह सर कैसे,
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे ॥

गुञ्जत मधुकर-निकर अनूपा,
सुन्दर-खग रव नाना रूपा ।
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी,
जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी ॥

चातक रटत तृषा अति ओही,
जिमि सुख लहै न शङ्कर-द्रोही ।
शरद ताप निशि शशि अपहरई,
सन्त दरश जिमि पातक टरई ॥

देखहिं विधु चकोर समुदाई,
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ।
मशकदंश बीते हिम-त्रासा,
जिमि द्विज-द्रोह किये कुल नासा ॥

भूमि जीव सकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय।
सतगुरु मिले ते जाहि जिमि, सशय भ्रम समुदाय ॥

प्रश्न

१—दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुर्जन क्या करता है ?
२—अपने शब्दों में शरद्वर्णन करो।
३—भारतवर्ष म शरद् ऋतु कब होती है ?
४—तुमको वर्षा ऋतु अच्छी लगती है या शरद् ऋतु और क्यों अच्छी लगती है ? अपने विचारों को सक्षेप म लिखो।

९—महाकवि कालिदास

पुष्पेषु चम्पा, नगरीषु काञ्ची
नदीषु गङ्गा, नृन्वरेषु राम ।
रामासु रम्भा, पुरुषेषु विष्णु
काव्येषु माघ ,कवि कालिदास ॥

मालवा के राजा विक्रमादित्य बड़े प्रतापशाली राजा थे। वे बड़े शूर-वीर, गुणज्ञ और विद्वानो का आदर करनेवाले थे। उनकी राजधानी उज्जैन नगरी थी। उनकी सभा में धन्वन्तरि आदि नवरत्न थे। उन में कालिदास सब से उत्तम गिने जाते थे। कालिदास ब्राह्मण थे। इनकी जन्मभूमि काश्मीर थी, परन्तु

बहुधा ये उज्जैन में रहते थे। कहते हैं कि इन्होंने बचपन में कुछ भी न पढ़ा था। अपनी स्त्री के कारण इन्हें अमूल्य विद्याधन हाथ लगा। इसकी कथा इस प्रकार प्रचलित है कि राजा शारदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा महागुणवती और बड़ी पंडिता थी। उसने प्रण कर रखा था कि जो कोई मुझे शास्त्रार्थ में हरा देगा उसी के साथ मैं अपना विवाह करूँगी। उस विदुषी राजकुमारी की विद्वत्ता एवं रूप, यौवन और गुणों की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से पण्डित आते थे, पर उससे शास्त्रार्थ में हारकर लौट जाते थे। निदान पंडितों ने एकमत होकर यह विचार निश्चय किया कि इस राजकुमारी का विवाह किसी ऐसे मूर्ख से कराना चाहिये, जिससे इसको जन्म भर रोते ही बीते। यह सोच-कर वे एक मूर्ख की खोज में निकले।

थोड़ी दूर जाकर क्या देखते हैं कि एक मनुष्य जिस डाल पर बैठा है उसी को काट रहा है। उसे महा मूर्ख समझकर पंडितों ने उसे बड़े आदर से नीचे बुलाया और कहा कि हमारे साथ चलो, हम तुम्हारा विवाह राजा की पुत्री के साथ करा दें। परन्तु वहाँ जाकर तुम मुँह से न बोलना। जो कुछ बातचीत करनी हो सब संकेतों द्वारा करना। इस प्रकार पट्टी पढ़ाकर वे सभा में ले गये। पंडितों ने उसका बड़ा आदर किया और उसे उन्होंने सब से ऊँचे आसन पर बैठाया। जब वह बैठ गया तब राजकुमारी से निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और विद्वान् हमारे गुरु महाराज आपके साथ विवाह करने आये हैं, परन्तु आजकल ये मौनव्रत धारण किये हुए हैं।

जो कुछ शास्त्रार्थ करना हो सब संकेतों द्वारा कीजिये। राजकुमारी ने इस अभिप्राय से कि ईश्वर एक है, एक उँगली उठायी। उस मूर्ख ने समझा कि राजकुमारी एक उँगली उठाकर मेरी आँख फोड़ना चाहती है। अत उसने इस विचार से कि मैं तेरी दोनों आँखें फोड़ दूँगा अपनी दो उँगलियाँ दिखलायी। परन्तु पण्डितों ने उन दोनों उँगलियों से ऐसे ऐसे अर्थ निकाले, ऐसे ऐसे गूढ भाव प्रकट किये कि राजकुमारी को हार माननी पड़ी। फिर क्या था, दोनों का विवाह हो गया। रात को राजभवन में जब दोनों सो रहे थे तब एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि यह क्या हल्ला है? वह मूर्ख तो किसी शब्द का भी यथार्थ उच्चारण कर नहीं सकता था। उसने कहा "उट्र" चिल्लाता है। राजकुमारी ने फिर पूछा, तब भी उस मूर्ख के मुँह से "उष्ट्र" शब्द शुद्ध न निकला। बार-बार "उट्र-उट्र" बकता रहा। तब तो पंडितों का छल राजकुमारी पर खुल गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। फिर क्रोध में आकर उस मूर्ख को घर से बाहर निकलवा दिया।

मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। पहले तो उसे इतना दु ख हुआ कि आत्मघात करने पर सन्नद्ध हो गया। फिर सोच-समझकर काली देवी की आराधना करने लगा। देवी की कृपा से उसे विद्या की सिद्धि हुई और वह कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब वह पंडित होकर घर लौटा तब द्वार के किवाड़ बन्द पाये। किवाड़ खुलवाने के लिये उसने अपनी स्त्री से कहा —"अनावृतकपाट द्वारं देहि।" अर्थात् किवाड़

विद्वत्तमा ने पति की बोली पहचानी और कहा—"अस्ति कश्चिद्वाग्विशेष. ?" अर्थात् क्या कुछ बोलने में विशेषता है ? कालिदास ने अपनी स्त्री का प्रश्न सुनकर उसका एक-एक पद ग्रहण करके तीन काव्य बनाये । "अस्ति" पद को ग्रहण करके "अस्त्युत्तरस्या" इत्यादि कुमारसम्भव नामक महाकाव्य का निर्माण किया, दूसरे "कश्चित्" पद को ग्रहण करके "कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा" इत्यादि मेघदूत की रचना की और तीसरे पद "वाग्" को ग्रहण करके उन्होंने "वागर्थाविव सपृक्तौ" इत्यादि रघुवश नामक महाकाव्य रचा । कालिदास को धुरन्धर विद्वान् देखकर विद्वत्तमा को जितना आनन्द हुआ होगा, वह लिखने में नहीं आ सकता ।

कालिदास कौन थे और वे किस समय में हुए, यह अभी तक ठीक-ठीक निश्चय नहीं हुआ । परम्परा से यहा सुनने में आता है कि वे राजा विक्रमादित्य के समय में उनकी सभा में नवरत्नों के मुखिया थे ।

कालिदास की रचनाओं में तीन नाटक और चार काव्य प्रसिद्ध हैं । नाटकों के नाम अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र हैं तथा काव्यो के नाम रघुवश, कुमारसभव, मेघदूत और ऋतुसंहार हैं । इनके अतिरिक्त नलोदय, ज्योतिर्विदाभरण आदि कुछ और भी ग्रथ उनके बनाये हुए बताये जाते हैं, पर बहुत सभव है कि वे किसी दूसरे कालिदास की रचनाएँ हों ।

कालिदास सस्कृत के सब से बडे कवि माने जाते हैं ।

उनकी कीर्त्ति भारतवर्ष के बाहर भी दूर-दूर तक फैल चुकी है। उनके शकुन्तला नाटक को पढकर दुनिया चकित है। एक बडे विद्वान् कवि का कहना है कि कालिदास ने इस नाटक में पृथ्वी पर स्वर्ग उतार दिया है।

प्रश्न

१—कालिदास ने विद्योपार्जन कैसे किया ?

२—उनका कौन सा ग्रन्थ तुमने पढ़ा है ? उसके दो श्लोक लिखो।

३—सक्षेप में कालिदास की जीवनी अपनी भाषा में लिखो।

१०—स्वास्थ्य-रक्षा

भगवान ने हमारे शरीर को स्वस्थ बनाया है। हमारा स्वास्थ्य उसी समय बिगड़ता है जब हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। शरीर को पूर्णतया स्वच्छ रखना, शुद्ध वायु सेवन करना, स्वच्छ एवं शुद्ध जल तथा भोजन का प्रयोग करना, समय से सोना, उठना, स्नान, भोजन और व्यायाम करना, सब के साथ प्रेमभाव रखना, अपने आचार-विचार उत्तम रखना, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि बुरे भावों से दूर रहना स्वास्थ्य के लिये हितकर है। निरोग रहने के लिये यह परमावश्यक है कि पूज्य ऋषियों के बनाये हुए धर्म-पथ पर चलें और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करें।

रात को जल्द सोना और प्रात काल जल्द उठना स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकारी है। सूर्योदय के बाद तक सोते रहना दरिद्रता का चिह्न है और शरीर के लिये बहुत हानिकारक है। कहा भी है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणम्
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणि.॥

निरोग रहने के लिये शरीर को स्वच्छ रखना बहुत आवश्यक है। इसलिये इसका बराबर ध्यान रखना चाहिये। मलत्याग की क्रिया नियमित समय पर होनी चाहिये। मलमूत्रादि के वेगों को कभी नहीं रोकना चाहिये। शरीर को स्वच्छ रखने से चित्त प्रसन्न रहता है और उत्साह बढ़ता है। पढने मे मन लगता है और स्मरण शक्ति बढती है। स्वास्थ्य ठीक रहता है और शरीर में बल बढता है। शौच के बाद दन्तधावन करना चाहिये। जो लोग दाँत साफ नहीं करते उनके मुँह से दुर्गन्ध आती रहती है एव उनके दाँतों पर मैल जम जाता है और कुछ समय के बाद कीडे लग जाते हैं, जिससे दाँत खोखले होकर टूटने लगते हैं। दाँतों को स्वच्छ रखना बहुत सहज है, किन्तु नित्य साफ करना चाहिये। बबूल या नीम की दतवन सर्वश्रेष्ठ है। यदि यह न मिल सके तो किसी अच्छे मञ्जन को काम में लाना चाहिये।

शरीर को स्वच्छ करने की सब से उत्तम रीति स्नान है। स्नान का यह प्रयोजन नहीं कि शरीर पर लोटा दो लोटा जल डाल दिया, किन्तु उचित ढग और नियमित समय का स्नान ही लाभकारी और स्वास्थ्य-वर्धक होता है। स्नान नित्य करना चाहिये। यह आवश्यक नित्य कर्म है। स्नान करने का सब से उत्तम समय शौच आदि से निवृत्त होने के बाद प्रात काल का है। उस समय के स्नान से दिन और रात का जमा हुआ मैल शरीर से दूर हो जाता है और चित्त में उत्साह आ जाता है। शुद्ध और खुली वायु में स्नान करना विशेष लाभदायक होता है। स्नान का जल शुद्ध होना चाहिये। स्वच्छ ठण्डे जल से स्नान करने से बहुत लाभ होता है। जहाँ नदी हो वहाँ नदी की धारा में स्नान करना चाहिये। गगाजल में विशेष गुण हैं। गगा-स्नान से बहुत लाभ होते हैं। इससे रोगी मनुष्य भी निरोग हो जाते हैं। धार्मिकदृष्टि से भी इसका बडा महत्व है। स्नान से पहले शरीर पर तेल की मालिश करना उत्तम है। नहाते समय सारे शरीर को भलीभाँति मलना चाहिये। जाडे में कम से कम महीने में दो बार तो तैल की मालिश होनी ही चाहिये। इससे चर्म में रक्त का प्रवाह बढ जाता है और भीतर की चिपली वस्तुएँ बाहर आ जाती हैं। स्नान के बाद साफ़ तौलिये से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछना आवश्यक है। आँख, कान, नाक, जिह्वा, नाखून आदि की सफाई के लिये आजकल साबुन का प्रयोग बहुत बढ रहा है, किन्तु यह बड़ी अपवित्र और हानिकारक वस्तु है। इससे बालों की हानि होती है और वे

जल्द सफेद हो जाते हैं। शरीर पर लगाने से त्वचा में भी रूखापन आ जाता है। सिर धोने के लिये आँवला सर्वोपरि है। इससे बाल मुलायम और लम्बे हो जाते हैं। आँवले के अभाव में रीठा, बेसन, बेल, मुल्तानी मिट्टी आदि का प्रयोग भी अच्छा है।

स्नान के बाद देवाराधन करना चाहिये। इसे नित्य-कर्म में माना गया है। सन्ध्योपासन से शरीर निरोग रहता है, चित्त प्रसन्न और मन में अद्भुत स्फूर्ति बनी रहती है। इससे चित्त को एकाग्र करने की शक्ति का सचार होता है। प्राणायाम से मन की शुद्धि होती है और आयु की वृद्धि होती है। धर्मबुद्धि का विकास होता है और बुरी वासनाएँ दब जाती हैं। चित्त को शान्ति मिलती है और सद्भाव का सचार होता है। स्मरणशक्ति बढ जाती है और विद्योपार्जन मे बड़ी सहायता मिलती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को देवाराधन अवश्य करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-रक्षा के लिये पाँच बातो पर ध्यान देना आवश्यक है, अर्थात् घर, वस्त्र, भोजन, व्यायाम और रहन-सहन का ढंग।

घर—यथासभव घनी बस्ती से हटकर होना चाहिये, जहाँ शुद्ध हवा अच्छी तरह मिल सके। आसपास खुली जमीन हो तो और भी अच्छा है। पर इस बात का ध्यान रहे कि आसपास की धरती में पानी न समाता हो और न इकट्ठा होता हो। घर में ऐसी खिड़कियाँ और दरवाजे अवश्य हो जिनसे साफ हवा घर के प्रत्येक भाग में पहुँच सके। जिस मकान मे केवल एक ही

दरवाजा होता है, उसकी हवा साफ नहीं हो सकती। इसके साथ-ही-साथ घर ऐसा बना हुआ होना चाहिये कि सूरज की धूप भी अच्छी तरह पहुँच सके। अँधेरे मकानों में रहनेवाले मनुष्य कभी निरोग नहीं रह सकते। घर के कमरे यथासभव ऊँचे बनवाने चाहियें। सारे घर को बुहारी आदि से प्रति दिन साफ करना चाहिये और साल में एक बार अवश्य पोत देना चाहिये। रोटी बनाने की जगह अलग और बिल्कुल साफ-सुथरी तथा लिपी पुती रहनी चाहिये। पाखाना और पेशाब-खाना घर के ऐसे भाग में होना चाहिये जो रसोई से दूर हो। नालियाँ काफी ढाल की हों, जिनसे पानी कहीं रुकने न पावे और तुरन्त बह जाय। जिस घर में सील रहती हो वह रहने योग्य नहीं होता। अपने घर को कभी गदा मत बनाओ। घर में जगह-जगह थूकना, फल छीलकर छिलके फर्श पर पड़े रहने देना, साग-भाजी काटकर उसकी छीलन घर में ही डाल देना, रद्दी कागज फाड़कर या पूड़ी मिठाई खाकर उसके पत्ते या दोने आँगन में फेंक देना आदि बड़ी गन्दी आदतें हैं। कूड़े को बटोरकर ऐसी जगह डाल देना चाहिये जो बैठने-उठने की जगह से दूर हो। पाखाने के घर की सफाई पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। वह उतना ही साफ होना चाहिये, जितना कोई कमरा। सोने का कमरा खूब हवादार होना चाहिये। उसमें सन्दूके आदि बहुत सा सामान नहीं रखना चाहिये।

वस्त्र—ऋतु के अनुकूल पहनना चाहिये। उनके बहुमूल्य होने की कोई आवश्यकता नहीं, हाँ सफाई अवश्य हो। यथा

सभव कम-से कम वस्त्रो का उपयोग करना चाहिये। तग वस्त्रों को पहनना अच्छा नहीं। वस्त्र ऐसे हों जिनमे अगों के परिचालन मे कठिनता न पडे और त्वचा तक हवा पहुँचती रहे। नीचे पहनने के वस्त्र को प्रतिदिन धोकर साफ करना चाहिये। सिर का वस्त्र यथासभव हल्का होना चाहिये। ठण्डे देशों मे तथा जाडे के दिनो में ऊन के कपडे पहनना आवश्यक है, जिसमें शरीर को ठण्ड न लगने पावे। गर्मी में हल्के वस्त्र पहिनने पडते हैं। मैले वस्त्र पहिनना वहुत बुरा है। इससे रोग उत्पन्न होता है। वस्त्र स्वच्छ रखने के लिये धन की आवश्यकता नहीं, किन्तु दृढ सकल्प चाहिये।

वस्त्रो को स्वय धो डालने में कोई शर्म नहीं, किन्तु अपनी चीजों को ठीक रखने के लिये अपने ही ऊपर निर्भर रहना गर्व की वात है। वस्त्रो का फटा होना भी वहुत बुरा है। इससे लापरवाही सूचित होती है। वस्त्र की मरम्मत कर लेना या करा लेना वडा आवश्यक है।

भोजन—स्वास्थ्य उत्तम भोजन पर निर्भर है और उसी से शरीर में वल आता है। उत्तम भोजन वही है जिससे किसी प्रकार का रोग उत्पन्न न हो और जो काम करने के लिये शक्ति उत्पन्न करे। बाजार का वना भोजन हानिकारक होता है। इस लिये यथासभव घर का वना पवित्र भोजन ही स्वास्थ्यकर है। एक कहावत है कि खाने के लिये न जियो, किन्तु जीने के लिये खाओ। भोजन सदा नियमित और सादा होना चाहिये। यह ठीक नहीं कि एक दिन दस बजे भोजन हो और दूसरे दिन दो

बजे। वैधक शास्त्र में कहा गया है " याम-मध्ये, न भोक्तव्य याम-युग्म न लघयेत्" अर्थात् सूर्योदय से एक पहर के भीतर भोजन न करे और दूसरे पहर के भीतर अवश्य कर ले। सायकाल का भोजन सोने के तीन घटे पूर्व कर लेना चाहिये। व्यायाम के पीछे तुरन्त भोजन करना ठीक नहीं। भोजन के पश्चात् कुछ देर आराम अवश्य करे और सायकाल के भोजन के पश्चात् शत पद चलना चाहिये।

भोजन खूब भूख लगने पर ही करना चाहिये। भोजन करते समय भी ठूँसकर खाना अच्छा नहीं। कहा गया है कि पेट को आधा भोजन से, चौथाई पानी से और बाकी हवा से भरे। भोजन जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिये। भोजन बदल-बदल करना उचित है। सदा एक-सा भोजन अच्छा नहीं लगता।

मास भोजन की अपेक्षा वनस्पति भोजन कहीं अधिक अच्छा है। दूध अवश्य पीना चाहिये। भोजन में हरे साग और फलों की आवश्यकता अधिक रहनी चाहिये। बहुत कम स्वाद की चीजें स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती हैं। दूध बहुत उत्तम भोजन है।

व्यायाम—मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्र में कहा है—

शरीरोपचय कान्तिर्गात्राणा सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्य स्थिरत्व लाघव मृजा॥
श्रम क्लम पिपासोष्ण शीतादीना सहिष्णुता।
आरोग्यश्चादि परम व्यायामादुपजायते॥

खेद है कि हमारे भारतीय विद्यार्थी पश्चिमी शिक्षा के फेर मे पड़कर इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। शरीर-यात्रा के लिये व्यायाम अनिवार्य है। व्यायाम सदा निश्चित समय पर नियमित रूप से किया जाना चाहिये।

अनियमित व्यायाम से लाभ नहीं होता। व्यायाम के अनेक भेद हैं उनमें से कोई-न-कोई अपनी रुचि और बल के अनुसार प्रतिदिन करना चाहिये। चलना और तैरना बहुत अच्छे व्यायाम हैं। चलने के व्यायाम के लिये सब से उपयुक्त समय प्रात काल का है। युवा पुरुषों को प्रतिदिन आठ दस मील चलना चाहिये। दौडना, घुडसवारी, दंड-बैठक, मुद्गर आदि व्यायाम प्रात काल करे और सन्ध्या समय फुटवाल आदि मिल-जुलकर खेले जानेवाले खेल खेले।

रहन-सहन—चलते समय, बैठते समय, पढ़ते समय तथा लिखते समय शरीर को सदा सीधा रखे। कमर झुकाकर चलना या बैठना ठीक नहीं। थोडी रोशनी में पढने-लिखने का काम कभी मत करो। पढते समय पुस्तक को कम-से-कम फुट डेढ़ फुट दूर रखो। मिट्टी के तैल की रोशनी बहुत हानि पहुँचाती है।

स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये तमाखू, चाय, शराब आदि के नशों से सदा बचना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन स्वास्थ्य और शक्ति के लिये सब से अधिक आवश्यक है। मानसिक विचारों का भी स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पडता है। इसलिये अनुत्साह, निराशा, चिन्ता आदि भावों को पास न फटकने दो। 'बीती ताहि विसारि दे, आगे की सुधि लेय'—यह सिद्धान्त सदा ध्यान में रखे।

मनुष्य का शरीर परमात्मा की दी हुई एक धरोहर है। उसके साथ मनमानी करके उसका नाश करने का मनुष्यों को कोई अधिकार नहीं। अत. सदैव अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि इसी के द्वारा लोक-परलोक दोनों का साधन होता है। 'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्'।

प्रश्न

१—स्वास्थ्य ठीक किस प्रकार रह सकता है, संक्षेप में कहो।

२—यदि हम अपने शरीर को स्वच्छ न रखें तो क्या हानि होगी?

३—रहने का घर कहाँ और कैसा होना चाहिये?

४—चाय, तमाखू पीने से, कमर झुकाकर चलने या बैठने से तथा व्यायाम न करने से क्या-क्या हानि हो सकती है?

५—भोजन कितना और कैसे करना चाहिये?

११—परीक्षा

यथा चतुर्भि कनक परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनै ।
तथा चतुर्भि पुरुष परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥

जब रियासत देवगढ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े

हुए तब परमात्मा की याद आयी। जाकर महाराज से विनय की—"दीनबन्धु! गुलाम ने हुजूर की खिदमत चालीस साल तक की, अब कुछ दिन परमात्मा की सेवा करने की आज्ञा चाहता हूँ। और फिर मेरी अवस्था भी हीन हुई, राज-काज सँभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढापे में दाग लगे। सारी जिन्दगी की नेकनामी मिट्टी मे मिल जाय।"

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीति-कुशल दीवान का बडा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तब हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हाँ शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिये नया दीवान आप को ही चुनना पडेगा।

दूसरे दिन देश के नामी-नामी पत्रों मे यह विज्ञापन निकला कि देवगढ के लिये एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में हाजिर हों। यह जरूरी नहीं कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मन्दाग्नि के मरीजों को यहाँ तक कष्ट उठाने की जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मेदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देख-भाल की जायगी। विद्या का कम, परन्तु कर्त्तव्य का अधिक विचार किया जायगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे वे इस पद पर सुशोभित होंगे।

× × × ×

इस विज्ञापन ने सारे देश मे हलचल मचा दी। ऐसा

ऊँचा ओहदा, और किसी प्रकार की सनद की क़ैद नहीं। केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना नसीब अज-माने के लिये चल खड़े हुए। देवगढ में नये-नये और रङ्ग-बिरङ्ग के मनुष्य दिखायी देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मेदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पञ्जाब से चला आता था, कोई मद्रास से, कोई नये फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। रङ्गीन ऐमामे और चुगे, और नाना प्रकार के अङ्ग-रखे और कटोप देवगढ में अपनी सजधज दिखाने लगे।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर "अ" नौ बजे तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर "ब" को हुक्का पीने की लत थी, मगर आजकल बहुत रात गये किवाड बन्द करके अन्धेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर "द","स" और "ज" से उनके घरों पर नौकरों का नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल "आप" और "जनाब" के बगैर नौकर से बात-चीत नहीं करते थे। महाशय "क" नास्तिक थे। आजकल उनकी धर्मनिष्ठता देखकर मन्दिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शङ्का लगी रहती थी। मिस्टर "ल" को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ खोले हुए पढने में डूबे रहते थे। जिससे बातें कीजिये, वह नम्रता और सदाचार का देवता बन

आत्मबल और उदारता का सचार है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतायेगा। उसका सकल्प दृढ़ है, जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाय, परन्तु दया और धर्म के मार्ग से कभी न हटेगा। इसलिये दीवान के पद पर इन्हें नियुक्त करके मैं निश्चिन्त हो जाता हूँ। इनके हाथ से प्रजा को सदा लाभ ही पहुँचेगा।"

प्रश्न

१—सरदार सुजान सिंह ने पं० जानकीनाथ को क्यों दीवान बनाया? उन में कौन विशेष गुण थे?

२—इस कथा से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

१२—गोस्वामी तुलसीदास

साधारणतया भारतवर्ष भर में और विशेषकर उत्तर भारत में ऐसा कोई मनुष्य न होगा जिसने 'तुलसी-रामचरितमानस' का नाम न सुना हो। राजा से लेकर रङ्क तक और महलों से लेकर झोंपड़ों तक सब कहीं इसका प्रचार है। बड़े-बड़े विद्वानों से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक 'रामचरितमानस' से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। इस ग्रन्थ



तुलसीदास

ने हिन्दू-जाति का बडा उपकार किया है। रीति, नीति, आहार, व्यवहार सब बातों में मानो 'रामचरितमानस' ही हिन्दू-मात्र के लिये एक-मात्र पथदर्शक है।

प्रत्येक विषय में उसकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जनसाधारण के लिये धर्मशास्त्र का काम देती हैं। न जाने इस ग्रन्थ ने कितनों को डूबने से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराशामय जीवन में आशा का सञ्चार किया, कितनों को घोर पाप से बचाकर पुण्य के सञ्चय करने में लगाया और कितनों को धर्मपथ पर डगमगाते हुए चलने में सहारा देकर सँभाला। रामायण के विशद चरित्र-चित्रण एवं मानवीय मनोविकारों के स्पष्टीकरण ने इसे अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है। ऐसे ग्रन्थरत्न के बनानेवाले 'गोस्वामी तुलसी-दास' का जीवन-चरित सुनने की सभी को उत्कण्ठा रहती है। किन्तु शोक है कि इनके जीवन-वृत्तान्त के विषय में बहुत कम बातें ज्ञात हैं।

साधारण कवि प्राय लोभवश अपना और अपने आश्रय-दाता का वृत्तान्त अपने ग्रन्थ में लिखा करते हैं। परन्तु गोस्वा-मीजी ने मनुष्यों का चरित्र न लिखने का प्रण किया था, वे केवल भगवान का गुण-गान किया करते थे, इसलिये उन्होंने अपना कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा। कहीं-कहीं उनकी रचनाओं से उनके चरित्र का आभास-मात्र मिलता है, किन्तु वह केवल अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिये दिया गया है। किसी किसी ग्रन्थ का समय भी उन्होंने लिख दिया है। इस

प्रकार उनका चरित्र-वर्णन करने के लिये हमें अधिकतर दूसरे ग्रन्थों एव किंवदन्तियों का सहारा लेना बड़ा आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-समय किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में लिखा नहीं मिलता, कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म विक्रमी संवत् १५८९ मे हुआ। हम तो दृढतापूर्वक केवल इतना ही कह सकते हैं कि गोस्वामीजी का जन्म सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ और वे बडी आयु भोगकर परमधाम सिधारे। इनकी मृत्यु काशी में प्लेग के कारण हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

दोहा—सवत सोरह सौ असी, असी गग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

इनका जन्मस्थान राजापुर है, वहाँ पर गोस्वामीजी की कुटी, मन्दिर आदि आज भी विद्यमान हैं।

कोई इन्हें कान्यकुब्ज, कोई सरयूपारी और कोई पराशर गोत्र द्विवेदी ब्राह्मण कहते हैं। इसके लिये भी कोई विशेष प्रमाण नहीं जिससे कि हम निश्चयपूर्वक कुछ कह सकें। हाँ, इतना अवश्य है कि थे वे ब्राह्मण और बहुत सम्भव है कि सरयूपारी हों।

लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। यह कथन भी केवल अनुमान-मात्र है, इसकी पुष्टि विशेषरूप से कहीं नहीं मिलती। तुलसी-चरित में लिखा है कि तुलसीदास ने स्वय कहा है कि

इनके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे जिनके पुत्र का नाम शङ्कर मिश्र था। उनके सन्त मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र के गणपति, महेश, तुलाराम और मङ्गल चार पुत्र और वाणी एवं विद्या नाम की दो कन्याएँ हुईं। तृतीय पुत्र तुलाराम ही गोस्वामीजी थे। इनके गुरु नरहरिदास ने इनका नाम रामबोला रखा था, किन्तु यह अपनी दीनता दिखाने के लिये अपने आपको तुलसीदास कहने लगे। कहते हैं कि अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। त्यागने के सम्बन्ध में तो तुलसीदास ने विनयपत्रिका में स्पष्ट कहा है, पर उसका कारण नहीं बतलाया। इधर तुलसी चरित में विवाह तक तुलसीदास का माता-पिता के साथ रहना स्पष्ट कहा है। सम्भव है कि किसी कारणवश बालकपन से माता-पिता के जीवित रहते ही अपने गुरु नरहरिदास के यहाँ वे रहते रहे हों।

यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक एक पुत्र भी पैदा हुआ जो बचपन में ही मर गया था। तुलसी चरित में इनके तीन विवाह लिखे हैं—तीसरा विवाह कञ्चनपुर ग्राम के उपाध्याय लक्ष्मण की कन्या बुद्धिमती से हुआ था। इसी के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए।

कहते हैं कि तीसरे विवाह की
आसक्त रहा करते थे। एक दिन
घर चली गयी। गोस्वामीजी

जाकर वे स्त्री से मिले। वहाँ स्त्री के बुरा-भला कहने से वे ऐसे विरक्त हुए कि उसके बार-बार विनती करने पर भी सीधे काशी चले गये और भगवद्भजन में मग्न रहने लगे। वहाँ गङ्गा के तट पर, अस्सी घाट के समीप, उनका मठ अब तक बना हुआ है। वहाँ एक जोडी खडाऊँ रक्खी हुई हैं। लोग कहते हैं वे तुलसीदास की ही हैं। वे कभी-कभी तीर्थ-यात्रा के लिये भी जाया करते थे। इनमें अयोध्या, चित्रकूट और मथुरा मुख्य हैं।

गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त सब देवताओं का पूजन तथा जप करते हैं, वे किसी से विरोध नहीं रखते। यही सिद्धान्त तुलसीदास का भी था, क्योंकि उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रन्थ में सभी देवी-देवताओं से प्रार्थना की है और सभी को राम-मय बतलाया है। रामायण में गोस्वामीजी ने अपनी नम्रता बहुत ही दिखलायी है, यहाँ तक लिख दिया है कि—

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

ऐसी कहावत है कि गोस्वामीजी शोच के लिये नित्य गङ्गा-पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे का बचा हुआ जल आम के पेड की जड में डाल देते थे। एक दिन उस पेड पर रहनेवाले प्रेत ने उस जल से तृप्त हो गोस्वामीजी से वर माँगने के लिये कहा। गोस्वामीजी ने रामचन्द्रजी के दर्शन का

वर माँगा। उस पर अपनी अशक्तता बताते हुए प्रेत ने कहा कि अमुक मन्दिर में रामायण की कथा सुनने के लिये मैले-कुचैले कोढी का रूप धारण किये हुए हनुमान्जी प्रतिदिन आते हैं, उन्हीं की कृपा से तुम्हारा मनोरथ सफल हो सकेगा। निदान, ऐसा ही हुआ। बहुत कुछ आग्रह करने पर हनुमान्जी ने गोस्वामीजी से कहा कि चित्रकूट मे जाओ। वहीं दर्शन होगा। तुलसीदासजी ने ऐसा ही किया।

उनके सम्बन्ध मे और भी कई एक विचित्र कथानक प्रचलित हैं जैसे मुर्दे का जिलाना, हत्या छुडाना आदि आदि। तुलसीदासजी जैसे पारदर्शी तथा वाक्सिद्ध महात्माओं के विषय में इनका सघटित होना सहज है, किन्तु इनकी यथार्थता के विषय में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि तुलसीदासजी ने कबीर आदि की तरह अन्य कोई अलग मत नहीं चलाया, परन्तु चाहे किसी भी मत या धार्मिक विश्वास का हिन्दू क्यों न हो वह गोस्वामीजी के दिखाये मार्ग का अवश्य कुछ-न-कुछ अनुसरण करता है। उन्होंने रामायण में धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति आर्य-ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार सीधी सादी भाषा में उदाहरण के साथ समझायी है कि शैव, शाक्त, स्मार्त, वैष्णव किसी भी सिद्धान्त से विरोध नहीं पड़ता, और सब मतानुयायी उनकी रामायण का सम्मान करते हैं तथा साधारण लोगों की समझ में तो वह पाँचवाँ वेद है।

तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, हिन्दी भाषा में ही लिखा

है। उनके ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि वे संस्कृत भी पढे थे। रामायण के प्रत्येक काण्ड के आदि में उन्होंने जो श्लोक लिखे हैं वे इस बात के प्रमाण हैं। उन श्लोकों में उन्होंने यह भी लिखा है कि अनेक पुराणों को देखकर उनका निचोड़ रामायण में रखा गया है। पुराण और उपनिषद् आदि ग्रन्थ संस्कृत में ही हैं। इससे भी यह विदित होता है कि वे संस्कृत जानते थे। वे फारसी भी जानते थे। फारसी में लिखे हुए उनके कागज-पत्र मिले हैं। साराश यह है कि वे एक विद्वान् पुरुष थे।

तुलसीदास ने छोटे-बडे १२ ग्रन्थों का निर्माण किया है उनमें रामायण, विनयपत्रिका, गीतावली, दोहावली, कवित्त रामायण और रामाज्ञा अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने जितनी कविता की है, सब में श्रीरामचन्द्रजी का गुणगान किया है। उनके ग्रन्थों में रामायण सब से बडा और सब से उत्तम है। उसका नाम तुलसीदास ने रामचरितमानस रखा था, परन्तु अब सब कोई उसे रामायण ही के नाम से पुकारते हैं। किसी किसी का यह मत है कि यह काव्य संस्कृत के आदि-काव्य वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया है। परन्तु यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। दोनों ग्रन्थों की कथाओं में बड़ा अन्तर है। वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा तो अध्यात्म-रामायण से तुलसीदासजी की रामायण की कथा अधिक मिलती है।

तुलसीदासजी बडे महात्मा और बहुत बडे कवि थे। रामायण में उन्होंने जिस जिस विषय का वर्णन किया है,

उसका रूप-सा खड़ा कर दिया है। उनकी रामायण में अयोध्या काण्ड सब से उत्तम है। उसमें भी श्रीरामचन्द्र के साथ चलने के लिये सीता की प्रार्थना लक्ष्मण का अपनी माता से वन जाने की आज्ञा माँगना और राजगद्दी न स्वीकार करने के विषय में वसिष्ठ को भरत का उत्तर अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा विशेष मनोहर हैं। ब्रज, बुन्देलखण्ड, बिहार, बैसवाड़ा इत्यादि कई प्रान्तों की बोलियों में तुलसीदासजी ने रामायण लिखी है। उनके अन्य ग्रन्थों में भी यही मिश्रित भाषा पायी जाती है। तुलसीदास के ग्रन्थों में विनयपत्रिका का द्वितीय स्थान है। उसमें उन्होंने श्रीरामचन्द्र-सम्बन्धी नाना प्रकार की विनय-भरी कविताएँ की हैं।

सुनते हैं, राजापुर में तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई रामायण की एक पुस्तक थी। उसे कोई चुरा ले गया। जब वह पकड़ा गया तब उसने उस पुस्तक को यमुना की धारा में प्रवाहित कर दिया, इससे वह बिगड़ गयी। अयोध्याकाण्ड बीच में था, इस कारण केवल वही पढ़ने योग्य रह गया। वह अब तक राजापुर में रखा है।

प्रश्न

१—गोस्वामी तुलसीदास के विषय में तुम क्या जानते हो?

२—उन्होंने कौन-कौन से ग्रन्थ लिखे हैं?

३—तुलसीदास की रामायण में क्या विशेषता है?

१३—पुरुषार्थ

पुरुष क्या, पुरुषार्थ हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो।
प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो—
सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो।
प्रगति के पथ में विचरो उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥१॥

न पुरुषार्थ विना कुछ स्वार्थ है,
न पुरुषार्थ विना परमार्थ है।
समझ लो, यह बात यथार्थ है—
कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है।
भुवन में सुख-शान्ति भरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥२॥

न पुरुषार्थ विना वह स्वर्ग है,
न पुरुषार्थ विना अपवर्ग है।
न पुरुषार्थ विना क्रियता कहीं,
न पुरुषार्थ विना प्रियता कहीं।
सफलता वर तुल्य वरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥३॥

न जिसमें कुछ पौरुष हो यहाँ,
सफलता वह पा सकता कहाँ ?
अपुरुपार्थ भयङ्कर पाप है,
न उसमें यश है, न प्रताप है।
न कृमि-कीट समान मरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ४ ॥

मनुज-जीवन में जय के लिये—
प्रथम ही दृढ पौरुष चाहिये।
विजय तो पुरुपार्थ विना कहाँ,
कठिन है चिरजीवन भी यहाँ।
भय नहीं, भव-सिंधु तरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ५ ॥

यदि अनिष्ट अड़े, अड़ते रहें,
विपुल विघ्न पड़ें, पड़ते रहें।
हृदय में पुरुपार्थ रहे भरा—
जलधि क्या, नभ क्या, फिर क्या धरा।
दृढ रहो, ध्रुव धैर्य धरो, उठो।
पुरुष हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ६ ॥

यदि अभीष्ट तुम्हें निज स्वत्व है,
प्रिय तुम्हें यदि मान-महत्व है।

यदि तुम्हें रखना निज नाम है,
जगत में करना कुछ काम है।
मनुज ! तो श्रम से न डरो, उठो,
पुरुप हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ७ ॥

प्रकट नित्य करो पुरुपार्थ को,
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो—
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो।
सदय हो, पर-दुःख हरो, उठो !
पुरुप हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ८ ॥

प्रश्न

१—पुरुपार्थ क्यों करना चाहिये ? इससे क्या क्या लाभ हैं ? अपनी सरल भाषा में लिखो।

२—इस कविता को कण्ठस्थ कर लो।

१४—हमारा देश

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारत-भूमि-भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात् ॥

हमारे देश का नाम भारतवर्ष है। इसका एक पुराना नाम आर्यावर्त्त भी है । अनेक महापुरुषों ने इस देश मे जन्म लिया, जिनकी कीर्त्ति अब तक ससार में जगमगा रही है । यहीं जन्म लेकर भगवान् रामचन्द्र ने मर्यादापुरुषोत्तम का आदर्श ससार में खड़ा किया। यहीं जन्म लेकर भगवान् कृष्णचन्द्र ने कर्मयोग का महान् सदेश सुनाया। दया की पावन धारा से समस्त ससार को आप्लावित करनेवाले महात्मा बुद्ध ने भी यहीं जन्म धारण किया था । भरत के समान सिंहों से खेलनेवाले और अभिमन्यु के समान निर्भीक एव वीर बालक इसी भूमि के लाल थे । इसी पवित्र भूमि ने ससार को सब से पहले ज्ञान और सभ्यता की शिक्षा दी थी ।

इस देश के उत्तर मे विशाल हिमालय की शैलमाला पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है । इसी शैलराज में गौरीशकर और धवलागिरि जैसी ससार की सब से ऊँची चोटियाँ हैं । यहीं पर मानसरोवर नामक ताल है । यहीं से गगा यमुना तथा सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ निकलकर भारत भूमि को अपनी निर्मल

यदि तुम्हें रखना निज नाम है,
जगत में करना कुछ काम है।
मनुज। तो श्रम से न डरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ७

प्रकट नित्य करो पुरुपार्थ को,
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो—
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो।
सदय हो, पर-दुःख हरो, उठो।
पुरुप हो, पुरुपार्थ करो, उठो ॥ ८

प्रश्न

१–पुरुपार्थ क्यों करना चाहिये? इससे क्या-क्या लाभ हैं? अपनी सरल भाषा में लिखो।

२–इस कविता को कण्ठस्थ कर लो।

१४–हमारा देश

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारत-भूमि-भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद-हेतुभूते
भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात्॥

हमारे देश का नाम भारतवर्ष है। इसका एक पुराना नाम आर्यावर्त्त भी है। अनेक महापुरुषों ने इस देश मे जन्म लिया, जिनकी कीर्त्ति अब तक ससार मे जगमगा रही है। यहीं जन्म लेकर भगवान् रामचन्द्र ने मर्यादापुरुषोत्तम का आदर्श संसार में खडा किया। यहीं जन्म लेकर भगवान् कृष्णचन्द्र ने कर्मयोग का महान् सदेश सुनाया। दया की पावन धारा से समस्त ससार को आप्लावित करनेवाले महात्मा बुद्ध ने भी यहीं जन्म धारण किया था। भरत के समान सिंहों से खेलनेवाले और अभिमन्यु के समान निर्भीक एव वीर बालक इसी भूमि के लाल थे। इसी पवित्र भूमि ने ससार को सब से पहले ज्ञान और सभ्यता की शिक्षा दी थी।

इस देश के उत्तर मे विशाल हिमालय की शैलमाला पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है। इसी शैलराज में गौरीशकर और धवलागिरि जैसी ससार की सब से ऊँची चोटियाँ हैं। यहीं पर मानसरोवर नामक ताल है। यहीं से गगा-यमुना तथा सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ निकलकर भारत-भूमि को अपनी निर्मल

जलधारा से सींचती हैं। इसी के अंचल में वह काश्मीर प्रान्त है, जो काव्य और केशर का देश कहा गया है और जिसके सौंदर्य को देखकर किसी कवि ने कहा है कि यदि इस पृथ्वीतल पर कोई स्वर्ग है तो वह यही हे। इसकी राजधानी श्रीनगर की स्थापना सम्राट् अशोक ने की थी। भाष्यकार पतंजलि, साहित्य के आचार्य मम्मट, वैयाकरणशिरोमणि कैयट तथा महाकवि कल्हण ने इसी भूमि में जन्म-ग्रहण किया था। काश्मीर के बीच से सिंधु नद बहता है। सिंधु के उस पार केकय और गान्धार के प्राचीन देश हैं। यहीं प्रतापी मौर्य सम्राट् ने यवन-सेनापति सेल्यूकस को हराया था। सिंधु के समीप ही तक्षशिला नगरी है, जहाँ प्राचीन भारत का सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय था और जहाँ पर व्याकरण के महान् आचार्य पाणिनि, कूटनीतिज्ञ चाणक्य, महावैद्य जीवक और चरक ने शिक्षा पायी थी।

काश्मीर के दक्षिण में पंजाब पञ्चनद-प्रान्त है, जहाँ हिमालय की पाँच पुत्रियाँ सतलज, रावी, चिनाब, व्यास और झेलम निरन्तर क्रीडा करती हैं। झेलम के किनारे महाराज पुरु ने जगद्विजयी यवन-सम्राट् सिकंदर का अकेले सामना किया था। ---- के तीर पर गुप्त-सम्राट् स्कन्दगुप्त ने दुर्दान्त हूणों को [illegible] हार दी थी। यहीं पवित्र धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र है, जहाँ भगवान् [illegible] ने अर्जुन को गीता सुनायी थी। यहीं मालव और क्षुद्रक [illegible] के प्रजातन्त्र-राज्य थे, जिन्होंने यूनानी सेना को परास्त [illegible] सिकंदर तक को संधि करने के लिये बाध्य किया था। [illegible] धर्म और देश की रक्षा के लिये सिख जाति के असंख्य वीरों

ने अपना बलिदान दिया है। महात्मा नानक और गुरु गोविंदसिंह की क्रीडास्थली यही भूमि है। यहाँ अमृतसर सिखों का तीर्थस्थान गुरुद्वारा है। इसकी राजधानी लाहोर या लवपुर है, जिसे श्रीराम के द्वितीय पुत्र लव ने बसाया था। इसी के पास देहली का महानगर है, जो अनेक सम्राटों की राजधानी रही और इस समय भी भारतवर्ष की राजधानी है। सम्राट् के प्रतिनिधि वाइसराय महोदय यहीं निवास करते हैं।

यमुना नदी के तट पर खडे होकर देखने से दाहिने हाथ की ओर विशाल राजस्थान है और बाँयीं ओर संयुक्तप्रान्त। ऐसा जान पडता है मानो सूर्य की यह दुहिता क्षात्रधर्म और ब्राह्मणधर्म के बीच खडी हुई है। असंख्य वीरों को जन्म देने-वाली वीरभूमि राजस्थान की महिमा कौन गा सकता है! अत्यन्त प्राचीन काल में जब सरस्वती नदी समुद्र तक बहती थी, यह भूमि समुद्र के तल में छिपी हुई थी। विधाता के विशेष प्रसाद से वीर-रस ने अपने निवास के लिये यह भू-खंड समुद्र से प्राप्त किया। यहाँ कोई स्थान ऐसा नहीं जो किसी न किसी वीर की कीर्त्ति गाथा से सम्बद्ध न हो। यहाँ की वीर नारियों ने अपने देश और अपने सम्मान की रक्षा के लिये हँसते-हँसते अपने प्राण अग्नि को समर्पित कर दिये थे। महारानी पद्मिनी ने यहीं आत्मबलि दी थी। यहाँ के आडावला (अर्बुद) पहाड़ की दुर्गम घाटियों ने कई बार राजपूतों की मर्यादा की रक्षा की है। हिन्दू-जाति को स्वतंत्रता का पाठ पढानेवाले और उसका सिर ऊँचा रखनेवाले महाराणा प्रताप और राठोर दुर्गादास ने

अपने जन्म से इसी भूमि को पवित्र किया था। भक्त-शिरोमणि मीराबाई ने जिनके भजन आज भारतवर्ष के घर-घर में गाये जाते हैं, यहीं जन्मग्रहण किया था। यहीं पर बारह वर्ष के बालक बादल ने अलाउद्दीन जैसे प्रतापी सम्राट् को छकाया था। यहीं माघ जैसे महान कवि की जन्म-भूमि है। राजपूत-आन के टूटते हुए आशा-तन्तु को बचानेवाले, अपनी कविता में दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले महाकवि पृथ्वीराज ने भी यहीं जन्म लिया था। इसी भूमि में सुप्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ है। भगवान् कपिल का आश्रम यहीं कोलायत (कपिलायतन) में है, जहाँ प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री तीर्थ करने के लिये आते हैं। इस समय इस प्रान्त में राजपूत जाति के अनेक राज्य हैं, जिनमें मेवाड़, मारवाड, जयपुर और बीकानेर प्रमुख हैं।

यमुना के बायें तट पर संयुक्तप्रान्त है, जहाँ प्राचीन ब्रह्मर्षिदेश है। यहाँ जगत्पावनी भागीरथी गंगा हैं। यहीं तीर्थराज प्रयाग है जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का सुप्रसिद्ध त्रिवेणी संगम है। यहीं अयोध्या और मथुरा के नगर हैं, जहाँ भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था। यहीं माया और काशी की पवित्र पुरियाँ हैं। इसी काशी में ज्ञानसूर्य का सब से पहले प्रकाश हुआ। भगवान् शंकर यहाँ विश्वनाथ के नाम से सदा निवास करते आये हैं। भगवान् शंकर की कृपा से यहीं पर शंकराचार्य के ज्ञान-चक्षु उन्मिषित हुए। यहीं पर वैयाकरण-शिरोमणि भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्त-कौमुदी की रचना की। आधुनिक काल में यहीं पर बापूदेव शास्त्री और शिवकुमार

राज्ञी की कीर्ति देशदेशान्तरों तक फैली। इसी पवित्र पुरी में महामना मदनमोहन मालवीयजी ने आर्य सस्कृति और साहित्य की शिक्षा के लिये हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना की है। यहीं से थोड़ी दूर पर सारनाथ में भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रथम उपदेश दिया था। इसी पावन प्रान्त में अमर कवि तुलसीदास ने जन्म लिया था, जिनका रामचरित-मानस आज हिन्दू जनता के हृदय का हार हो रहा है। इसी के अन्तर्गत हिमालय शैलमाला के अचल मे बदरीनाथ और केदारनाथ नामक पवित्र धाम हैं।

सयुक्तप्रान्त के पूर्व मे बिहारप्रान्त है, जहाँ जनक जैसे कर्मयोगी राजा और याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मनिष्ठ महर्षि हुए। भगवती सीता ने यहीं जन्म लिया था। यहीं पर जैन-धर्म के तीर्थंकर भगवान् महावीर अवतरित हुए थे। अजातशत्रु और चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे प्रतापी सम्राट् यहाँ पर हुए। यहीं पर प्रियदर्शी महाराज अशोक ने राज्य किया जो ससार के सब से बड़े आदर्श सम्राट् माने जाते हैं। उन्होंने लौकिक विजय की अपेक्षा धर्म-विजय को ही महत्त्व दिया और लका, यूनान तथा मिश्र जैसे सुदूर देशों में करुणापूर्ण बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये बौद्ध भिक्षुओं को भेजा था। यहीं पर हिन्दू-सस्कृति के उद्धारक समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे परम प्रतापी सम्राट् हुए, जिनका राज्यकाल भारतवर्ष का स्वर्णयुग समझा जाता है। यहीं पर आर्यभट, महाकवि बाण और मैथिलकोकिल विद्यापति ने जन्म लिया था। पाटलिपुत्र नगर इन समस्त सम्राटों की

राजधानी रही और इस समय भी पटना नाम से विहार का मुख्य नगर है। गया हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है, जहाँ पिंडदान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। राजगृह में जैनों का तीर्थ पार्श्वनाथ है। विहार के दक्षिण मे कलिंगप्रान्त है, जहाँ जगन्नाथपुरी का पवित्र धाम है।

विहार के पूर्व मे वंग देश है जो अपनी प्राकृतिक शोभा के लिये प्रसिद्ध है। इसी भूमि में भगवान् चैतन्य ने अवतार लेकर भक्ति का विस्तार किया था। चंडीदास और कृत्तिवास जैसे महाकवि और जीमूतवाहन रघुनन्दन जैसे धर्मशास्त्रकार यहीं उत्पन्न हुए थे। भारत का राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' पहले-पहल यहीं गाया गया। यहीं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्मभूमि है। वंग के पूर्व में कामरूप (आसाम) प्रान्त है, जहाँ कामाक्षा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहीं महानगर कलकत्ता है जो अंग्रेजी राज्य में लंदन के पश्चात् सब से बड़ा नगर है। यहीं गंगा और ब्रह्मपुत्र का संगम समुद्र के साथ होता है। गंगा-सागर-संगम पवित्र तीर्थ-स्थान है।

मध्यभारत में मालव देश है। यहाँ की प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी है, जहाँ संवत् चलानेवाले महादानी महाराज विक्रमादित्य हुए। इन्हीं महाराज के दरबार में संस्कृत-भाषा के सब से बड़े महाकवि कालिदास रहते थे, जिनकी कीर्ति आज देशदेशान्तरों में गूँज रही है। यहीं पर हूणों के नाशकर्त्ता महाराज यशोधर्मा हुए थे। यहाँ पर महाकालेश्वर का महान् तीर्थ है। यहीं धारा नगरी है, जहाँ सरस्वती के अवतार महाराज भोज राज्य करते थे। मालव

के पूर्व मे दशार्ण देश है, जो वीर आल्हा-ऊदल और छत्रमाल की क्रीड़ा-भूमि था। आजकल यहाँ पर इंदोर, ग्वालियर, रीवाँ आदि कई एक देशी राज्य हैं।

मध्यभारत के दक्षिण में मध्यप्रदेश है। यहाँ विन्ध्याचल और पारियात्र (सतपुडा) पर्वतों के बीच मेकलकुमारी नर्मदा बहती है, जिसके तट पर ओंकारेश्वर का तीर्थ है। मध्यप्रदेश के दक्षिण मे विदर्भ (वरार) देश है, जहाँ दमयन्ती और रुक्मिणी ने जन्म लिया था। यहीं पर महाकवि भवभूति का जन्मस्थान है, महाकवि भारवि और दंडी की जन्मभूमि भी यही है। नागपुर, जबलपुर आदि इस प्रान्त के प्रमुख नगर हैं।

मध्यभारत के पश्चिम में गुजरात का महान् प्रान्त है। इसी के सौराष्ट्र नामक खंड में भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारिका है, जो हिन्दूधर्म के चार धामों में से एक है। यहीं प्रभास का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहीं जैनों के गिरनार और शत्रुंजय तीर्थ हैं। इसी गुर्जर भूमि में कलिकाल के सर्वज्ञ महान् आचार्य हेमचन्द्र ने जन्म लिया था। यहीं पर मोरवी और पोरबंदर हैं, जहाँ आदर्श बालब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द और विश्ववंद्य महात्मा गांधी का जन्म हुआ था। आजकल इस प्रान्त का मुख्य नगर अहमदाबाद है, जो साबरमती नदी के किनारे बसा है।

गुजरात के उत्तर में सिन्धु देश है, जहाँ के राजा जयद्रथ ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लिया था। यहीं पर कराँची नामक भारत का एक प्रमुख बंदरगाह है, जो व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र है। गुजरात के दक्षिण में पश्चिमीघाट अथवा सह्याद्रि पर्वत के दोनों

ओर बसा हुआ महाराष्ट्रप्रान्त है जहाँ नामदेव, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास जैसे अनेकों सन्त महात्मा उत्पन्न हुए। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-साम्राज्य के उद्धारक महाराज छत्रपति शिवाजी को कौन नहीं जानता। वे इसी भूमि के सपूत थे। बाजीराव और नाना फडनवीस जैसे राज्य-संस्थापक और कुशल राजनीतिज्ञों को इस भूमि ने जन्म दिया है। पचवटी पढरपुर जैसे अनेक तीर्थ यहाँ स्थित हैं। इसी में बबई* का सुन्दर बन्दरगाह है, जो आधुनिक भारत का कलकत्ते के बाद सब से बडा शहर है। पूना इस प्रान्त का प्रमुख नगर है।

महाराष्ट्र के दक्षिण-पूर्व में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में विशाल आन्ध्र देश है, जहाँ के प्रतापी शालिवाहन राजाओं की विजयपताका मगध तक फहरा चुकी थी। श्रीशैल, द्राक्षाराम और कालेश्वर के महालिंग इसी देश में हैं। इसी प्रान्त में हैदराबाद का राज्य है। महाराष्ट्र के दक्षिण में कर्णाट का प्रान्त है, जहाँ मल्लिनाथ के समान अद्वितीय टीकाकार ने जन्म लिया था। कर्णाट के दक्षिण में केरल प्रान्त है, जो भगवान् शकराचार्य की जन्मभूमि है।

आन्ध्र के दक्षिण में द्रविड देश × है, जहाँ कावेरी नदी बहती है। यहीं काञ्ची और रामेश्वरम् के पवित्र तीर्थ हैं। इसी भूमि में भगवान् रामानुजाचार्य ने जन्म लेकर वैष्णव-धर्म की ध्वजा

---

* इस समय गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाट मिलकर एक ही बम्बई नामक प्रान्त बनाते हैं।

× इस समय आन्ध्र, द्रविड, केरल एक ही मद्रासप्रान्त में शामिल हैं।

फहरायी थी। यहीं तिरुवल्लुवर सदृश अमर कवि हुआ, जिसकी वाणी ने सहस्रों मनुष्यों को शान्ति और नीति की शिक्षा दी है। इसी में मद्रास का सुप्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह है।

असंख्य महान् विद्वानों, अमर कवियों, सच्चे पराक्रमी वीरों, सिद्ध महात्माओं और पतिव्रत धर्म की आदर्श सती-साध्वी वीरागनाओं को जन्म देनेवाली इस महान् भारतभूमि को धन्य है। किसका मस्तक इसके सामने आदर के साथ नहीं झुक जायगा? देवता तक इसके गीत गाते हैं और इसमें जन्म लेने की इच्छा करते हैं। इसका वाह्य रूप भी कितना सुन्दर है। प्रकृति के जितने विविध रूप यहाँ देखने को मिलते हैं उतने किस देश में मिलेंगे? गगनचुंबी विशाल हिमाच्छादित हिमालय इसका शुभ्र मुकुट है, रत्नाकर इसके चरण पखारकर अपने को धन्य समझता है। धन्य है यह पावन भूमि और धन्य हैं वे लोग जो इस जननी की गोदी में क्रीडा करते हैं।

प्रश्न

१—भारतवर्ष में कौन कौन सी मुख्य नदियाँ हैं? उनके विषय में तुम क्या जानते हो?

२—इसमें कितने प्रान्त हैं? यहाँ के किन-किन स्थानों की प्रसिद्धि है?

३—इस देश में कौन-कौन लोग प्रसिद्ध हो गये हैं, जिनसे देश का नाम हुआ?

४—पातञ्जलि, भरत, अभिमन्यु, माघ, विक्रमादित्य के विषय में तुम क्या जानते हो? संक्षेप में लिखो।

१५—महाराणा प्रताप और मानसिंह

'मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखं'

स्थान—प्रताप की कुटी

[व्रती वेश में राणा प्रताप और कुमार अमरसिंह]

प्रताप—आश्चर्य है, अमर! राजा मान आज यकायक इधर रास्ता कैसे भूल गए। (कुछ सोचकर) हूँ! इसमें अवश्य कोई गूढ़ रहस्य है। वे कहाँ से आ रहे हैं, कुछ मालूम हुआ?

अमर—वे शोलापुर-संग्राम में विजय पाकर मेवाड़ के महाराणा के दर्शन करने इधर चले आए हैं। भला, इसमें कौन सा रहस्य हो सकता है, पिताजी?

प्रताप—अभी तुम भोले हो, अमर। पददलित चित्तौड के हत-भाग्य राणा को अपना विजय वैभव दिखाकर प्रभावित करना क्या रहस्य नहीं है? मेवाड़ का आतिथ्य स्वीकार कर, पवित्र सीसौदिया-वंश से भोजन-व्यवहार कर, दासता के कलंक को धोने की चेष्टा कर, सारी राजपूत-जाति के सम्मुख अपने को उज्ज्वल प्रमाणित करने में क्या मानसिंह की कूट-नीति नहीं है?

अमर—तो क्या उनका सत्कार न होगा?

प्रताप—क्यों न होगा? जिस प्रकार वे हमारे अतिथि हुए

हैं, उसी प्रकार उनका सत्कार भी अवश्य होगा और वह तुम्हीं को करना होगा।

अमर—जो आज्ञा। (जाने को उद्यत होता है)

प्रताप—ठहरो! पहले उनके सत्कार की विधि तो सीख जाओ। (कान में कुछ देर तक कुछ कहकर प्रस्थान)

अमर—द्वारपाल!

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—क्या आज्ञा है, पृथ्वीनाथ!

अमर—हमारी कुटी के सामनेवाले मैदान में तबू तनवाकर खूब राजसी ठाटबाट और भड़कीली सजावट करवा रक्खो। सोने के बरतनों में बादशाही भोजन भरवा रक्खो! जाओ, जल्दी करो, वहीं हम राजा मानसिंह को लेकर अभी आते हैं।

(द्वारपाल चलने लगता है)

अमर—हाँ, एक बात और! जब राजा मान भोजन करके चल दें तो सारा सामान उदयसागर के अतल जल में विसर्जित कर देना! गंगाजल से धुलवाकर वहाँ की सारी भूमि पवित्र करवा देना। समझे। पिताजी की यही आज्ञा है। भारत को गुलामी की जंजीरों से जकड़नेवाले विदेशियों की जूठन खानेवाले देशद्रोही के स्पर्श का एक भी कण न रहने पाए। नहीं तो पिताजी नाराज होंगे।

द्वारपाल—जो आज्ञा अन्नदाता।

(प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराजकुमार की जय हो। राजा मानसिंह पधारते हैं।

अमर—उन्हे सादर लिवा लाओ और हमारे सभासदों को भी सवाद दो।

(प्रणाम करके दूत का प्रस्थान)

अमर—(स्वगत) पिताजी ने न आने का कारण क्या बताया था ? (याद करके) हॉ—ऑ—ऑ—ठीक !

(एक ओर से मानसिंह का अपने साथियों सहित प्रवेश और दूसरी ओर से प्रताप के सभासदों का अमर के पार्श्व में आकर खडे होना। अमर का मानसिंह की अगवानी करना)

अमर—अंबर के महाराज ! स्वागत है, आपने इस दीन-हीन मेवाड पर बड़ी कृपा की।

मान—पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप के दर्शनों की तीव्र ।ही यहाँ तक खींच लाई है कुमार !

अमर—महाराज, गरीबों की इस कुटी में आपके योग्य ‥मी का सर्वथा अभाव है। चलिए, आपके लिए डेरा ‥ किया गया है।

(सहसा जगल का परदा हटकर सामने राजसी तबू ‥ देता है)

अमर—पधारिए महाराज !

(मानसिंह चकित होते हैं, अमर उन्हें सोने की थाल के स ले जाते हैं)

अमर—गरीबों के घर की रूखी-सूखी ग्रहण कीजिए।

मान—(ठंढी साँस लेकर) हाय, यदि मुझे सचमुच रूखी-सूखी ही मिलती तो मैं धन्य हो जाता कुमार! (बात का रुख बदलकर) खैर, यह तो बताओ, महाराणा ने अभी तक दर्शन क्यों नहीं दिये?

अमर—वे जरा अस्वस्थ हैं, महाराज।

मान—(व्यंग्य से) आज ही अस्वस्थ हो गए हैं या पहले ही से थे! महाराणा के इस आकस्मिक अस्वास्थ्य का रहस्य कुछ-कुछ समझा जा सकता है। महाराणा ने क्या मुझे बिलकुल मूर्ख समझ रक्खा है, कुमार!

अमर—उनके मुँह से तो मैंने यह कभी नहीं सुना।

मान—तो क्या महाराणा मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे?

अमर—वे विवश हैं, महाराज!

मान—तो मैं भी विवश हूँ कुमार। महलों के पकवानों से ऊबकर मैं राणा की रूखी-सूखी खाने आया था। संसार के मान-सम्मान से घबड़ाकर मैं राणा का प्रेम पाने आया था। राणा ने मुझे इतना घृणित समझा। मेरा मुँह देखना समझा। क्या मैं कुत्ता हूँ कुमार, जो राणा दूर ही टुकड़े फेंक रहे हैं? मैं कोई सामान्य राजपूत नहीं के बड़े-से-बड़े संग्रामों में मैंने विजय

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराजकुमार की जय हो ! राजा मानसिंह पधारते हैं ।

अमर—उन्हें सादर लिवा लाओ और हमारे सभासदों को भी सवाद दो ।

(प्रणाम करके दूत का प्रस्थान)

अमर—(स्वगत) पिताजी ने न आने का कारण क्या बताया था ? (याद करके) हाँ—आँ—आँ—ठीक ।

(एक ओर से मानसिंह का अपने साथियों सहित प्रवेश और दूसरी ओर से प्रताप के सभासदों का अमर के पार्श्व में आकर खड़े होना । अमर का मानसिंह की अगवानी करना)

अमर—अंबर के महाराज ! स्वागत है, आपने इस दीन-हीन मेवाड पर बड़ी कृपा की ।

मान—पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप के दर्शनों की तीव्र लालसा ही यहाँ तक खींच लाई है कुमार !

अमर—महाराज, गरीबों की इस कुटी में आपके योग्य स्वागत-सामग्री का सर्वथा अभाव है । चलिए, आपके लिए डेरों में प्रबंध किया गया है ।

(सहसा जंगल का परदा हटकर सामने राजसी तंबू दिखाई देता है)

अमर—पधारिए महाराज !

(मानसिंह चकित होते हैं, अमर उन्हें सोने की थाल के पास ले जाते हैं)

अमर—गरीबों के घर की रूखी-सूखी ग्रहण कीजिए।

मान—(ठंढी साँस लेकर) हाय, यदि मुझे सचमुच रूखी-सूखी ही मिलती तो मैं धन्य हो जाता कुमार! (बात का रुख बदलकर) खैर, यह तो बताओ, महाराणा ने अभी तक दर्शन क्यों नहीं दिये?

अमर—वे जरा अस्वस्थ हैं, महाराज।

मान—(व्यंग्य से) आज ही अस्वस्थ हो गए हैं या पहले ही से थे! महाराणा के इस आकस्मिक अस्वास्थ्य का रहस्य कुछ-कुछ समझा जा सकता है। महाराणा ने क्या मुझे बिलकुल मूर्ख समझ रक्खा है, कुमार।

अमर—उनके मुँह से तो मैंने यह कभी नहीं सुना।

मान—तो क्या महाराणा मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे?

अमर—वे विवश हैं, महाराज।

मान—तो मैं भी विवश हूँ कुमार। महलों के पकवानों से ऊबकर मैं राणा की रूखी-सूखी खाने आया था। सम्मार के मान-सम्मान से घबड़ाकर मैं राणा का प्रेम पाने आया था। राणा ने मुझे इतना घृणित समझा। मेरा मुँह देखना भी पाप समझा। क्या मैं कुत्ता हूँ कुमार, जो राणा दूर ही से मेरे लिए टुकड़े फेंक रहे हैं? मैं कोई सामान्य राजपूत नहीं हूँ। भारत के बड़े-से-बड़े संग्रामों में मैंने विजय पाई है। भारतसम्राट् को

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराजकुमार की जय हो ! राजा मानसिंह पधारते हैं ।

अमर—उन्हे सादर लिवा लाओ और हमारे सभासदों को भी सवाद दो ।

(प्रणाम करके दूत का प्रस्थान)

अमर—(स्वगत) पिताजी ने न आने का कारण क्या बताया था ? (याद करके) हॉ—ऑं—ऑ—ठीक !

(एक ओर से मानसिंह का अपने साथियो सहित प्रवेश और दूसरी ओर से प्रताप के सभासदों का अमर के पार्श्व में आकर खडे होना । अमर का मानसिंह की अगवानी करना)

अमर—अवर के महाराज । स्वागत है, आपने इस दीन-हीन मेवाड पर वडी कृपा की ।

मान—पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप के दर्शनों की तीव्र लालसा ही यहाँ तक खींच लाई है कुमार ।

अमर—महाराज, गरीबों की इस कुटी में आपके योग्य स्वागत-सामग्री का सर्वथा अभाव है । चलिए, आपके लिए डेरों में प्रवन्ध किया गया है ।

(सहसा जगल का परदा हटकर सामने राजसी तबू दिखाई देता है)

अमर—पधारिए महाराज !

(मानसिंह चकित होते हैं, अमर उन्हें सोने की थाल के
स ले जाते हैं)

अमर—गरीबों के घर की रूखी-सूखी ग्रहण कीजिए !

मान—(ठंढी साँस लेकर) हाय, यदि मुझे सचमुच रूखी-
सूखी ही मिलती तो मैं धन्य हो जाता कुमार ! (थाल का थाल
बदलकर) खैर, यह तो बताओ, महाराणा ने अभी तक दर्शन
यों नहीं दिये ?

अमर—वे जरा अस्वस्थ हैं, महाराज ।

मान—(व्यग्य से) आज ही अस्वस्थ हो गए हैं या पहले
ही से थे ! महाराणा के इस आकस्मिक अस्वास्थ्य का कारण
कुछ-कुछ समझा जा सकता है । महाराणा ने क्या मुझे बिल्कुल
मूर्ख समझ रक्खा है, कुमार !

अमर—उनके मुँह से तो मैंने यह कभी नहीं सुना ।

मान—तो क्या महाराणा मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे ?

अमर—वे विवश हैं, महाराज ।

मान—तो मैं भी विवश हूँ कुमार । महलों के पकवानों से
ऊबकर मैं राणा की रूखी-सूखी खाने आया था । समार में,
मान-समान से घबडाकर मैं राणा का प्रेम पाने आया था ।
राणा ने मुझे इतना घृणित समझा । मेरा मुँह देखना भी पाप
समझा । क्या मैं कुत्ता हूँ कुमार, जो राणा दूर ही से मेरे लिए
टुकडे फेंक रहे हैं ? मैं कोई सामान्य राजपूत नहीं हूँ ।
के बडे-से-बडे संग्रामों में मैंने विजय पाई है । —

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराजकुमार की जय हो । राजा मानसिंह पधारते हैं ।

अमर—उन्हें सादर लिवा लाओ और हमारे सभासदों को भी सवाद दो ।

(प्रणाम करके दूत का प्रस्थान)

अमर—(स्वगत) पिताजी ने न आने का कारण क्या बताया था ? (याद करके) हाँ—आँ—आँ—ठीक !

(एक ओर से मानसिंह का अपने साथियो सहित प्रवेश और दूसरी ओर से प्रताप के सभासदों का अमर के पार्श्व में आकर खडे होना । अमर का मानसिंह की अगवानी करना)

अमर—अवर के महाराज ! स्वागत है, आपने इस दीन-हीन मेवाड पर बडी कृपा की ।

मान—पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप के दर्शनो की तीव्र लालसा ही यहाँ तक खींच लाई है कुमार !

अमर—महाराज, गरीबों की इस कुटी में आपके योग्य स्वागत-सामग्री का सर्वथा अभाव है । चलिए, आपके लिए डेरों में प्रबध किया गया है ।

(सहसा जगल का परदा हटकर सामने राजसी तंबू दिखाई देता है)

अमर—पधारिए महाराज !

(मानसिंह चकित होते हैं, अमर उन्हे सोने की थाल के पास ले जाते हैं)

अमर—गरीबों के घर की रूखी-सूखी ग्रहण कीजिए।

मान—(ठढी सॉस लेकर) हाय, यदि मुझे सचमुच रूखी-सूखी ही मिलती तो मैं धन्य हो जाता कुमार! (बात का रुख बदलकर) खैर, यह तो बताओ, महाराणा ने अभी तक दर्शन क्यों नहीं दिये ?

अमर—वे जरा अस्वस्थ हैं, महाराज।

मान—(व्यग्य से) आज ही अस्वस्थ हो गए हैं या पहले ही से थे! महाराणा के इस आकस्मिक अस्वास्थ्य का रहस्य कुछ-कुछ समझा जा सकता है। महाराणा ने क्या मुझे बिलकुल मूर्ख समझ रक्खा है, कुमार!

अमर—उनके मुँह से तो मैंने यह कभी नहीं सुना।

मान—तो क्या महाराणा मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे ?

अमर—वे विवश हैं, महाराज।

मान—तो मैं भी विवश हूँ कुमार। महलों के पकवानों से ऊबकर मैं राणा की रूखी-सूखी खाने आया था। ससार के मान-सम्मान से घबड़ाकर मैं राणा का प्रेम पाने आया था, राणा ने मुझे इतना घृणित समझा। मेरा मुँह देखना भी, समझा। क्या मैं कुत्ता हूँ कुमार, जो राणा दूर ही से टुकड़े फेंक रहे हैं ? मैं कोई सामान्य राजपूत नहीं मैं के बड़े-से-बड़े संग्रामों में मैंने विजय पाई है। —

रण नौका का मैं सर्वोत्तम खिवैया हूँ। आज सारा भारत जिस इगित पर नाच रहा है, उसी का मैं सर्वोच्च सेनापति हूँ—सर्व श्रेष्ठ सखा हूँ। इन भुजाओं से मैंने बडे-बड़े गर्वोन्नत मस्त झुका दिए हैं। मेरे साथ राणा का यह व्यवहार! इतनी घृणा इतनी उपेक्षा! क्या उदार मेवाड़ का परपरागत अतिथि-सत्का यही है?

अमर—अप्रसन्न न हों महाराज, इस सारी स्वागत-साम को आपके योग्य बनाने मे हम लोगों ने बहुत श्रम किया है इसे विफल न कीजिए। विलम्ब हो रहा है, भोजन कीजिए।

मान—भोजन! तुम्हे लाज नहीं आती, अमरसिंह! क्य मानसिंह ऐसे भोजन के लिए तरस रहा था? इस भोजन हृदय नहीं है, कुमार। इसके कण-कण से घृणा टपक रही है मैं भोजन न करूँगा। कहाँ हैं राणा प्रताप? मैं उनसे एक बा अवश्य मिलूँगा। बस कह चुका, बिना मिले न जाऊँगा। राण की इतनी स्पर्धा! मेवाड के छोटे-से शासक का इतना साहस भारत-सम्राट् के दाहिने हाथ मानसिंह का अपमान! सावधान सरदारो! सावधान! जाकर प्रताप से कह दो, समूचे मेवा को जलाकर राख कर देने की शक्ति अकेले इस मानसिंह के इगित में है।

(प्रताप का प्रवेश)

प्रताप—(तलवार तानकर) और मानसिंह के पूफ सम्राट् अकबर को नाको चने चबवाने की शक्ति सीसौदिया

रक्खा था कि मेवाड़ की ध्वजा तुम्हारे वैभव पर मोहित होकर तुम्हारे चरणों में झुक जायगी। क्या तुमने समझ रक्खा था कि पवित्र सीसौदिया-वंश अपना गौरव मुगलों की जूठन खानेवाले देशद्रोही के चरणों तले बिछा देगा। प्रताप के साथ भोजन करने की तुम्हारी कुटिल अभिलाषा। तुम्हारा कितना बड़ा भ्रम था, मानसिंह कुछ समझे ?

मान—खूब समझ रहा हूँ—सब समझ रहा हूँ, प्रताप! मैं क्या समझ रहा हूँ इसका उत्तर समय देगा और देगा मेवाड़ के विध्वस्त खँडहरों का हाहाकार।

(प्रस्थान)

प्रताप—जा, जा। बकवादी। देशद्रोही। मुगलों की चरण-रज मस्तक पर लगाकर राजस्थान के तिलक मेवाड़ को भय दिखाने आया है।

[पटाक्षेप]

प्रश्न

१–महाराणा प्रताप कौन थे ? वे अकबर से क्यों शत्रुता रखते थे ?
२–मानसिंह के साथ इन्होंने भोजन क्यों नहीं किया ?

बोलना और जुआ खेलना बड़े ही निन्द्य कर्म हैं, इनसे बचन चाहिये। ब्रह्मचारी को सत्यवादी और दयाशील होना चाहिये अच्छे विद्वान् और सच्चरित्र पुरुषों का सत्संग करना चाहिये जिससे चरित्रबल और विद्याभ्यास में उन्नति हो। व्यर्थ के गपाष्टक और कुसंगति में समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

इन नियमों का पालन करने से प्रत्येक पुरुष का कल्याण हो सकता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य व्रत सब के लिये हितकर है, किन्तु विद्यार्थियों के लिये इनका पालन करना आवश्यक है और विशेष लाभदायक है।

प्रश्न

१—भगवान् धन्वन्तरि महाराज ने अपने शिष्यों के कल्याण के लिये कौन सा उपाय बताया ?

२—भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के विषय में क्या कहा ?

३—अपने पूर्वजों की भाँति हम भी ज्ञान और अतुल शक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

४—प्रातःकाल से सायंकाल तक समय कैसे बिताना चाहिये ?

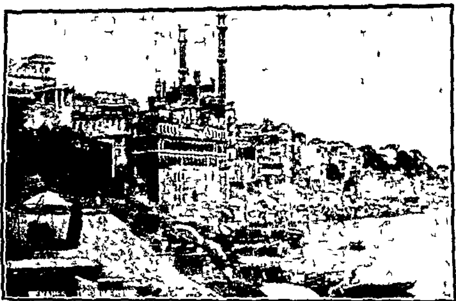
५—विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य के लिये शास्त्रोक्त किन नियमों का पालन करना आवश्यक है ?

६—सन्ध्योपासन से क्या लाभ होता है ?

१७—वाराणसी

भारतवर्ष में वाराणसी नगरी बहुत प्राचीन है। आजकल इसको बनारस कहते हैं और संयुक्तप्रान्त के बड़े-बड़े नगरों में इसकी गिनती है। काशी भी इसी का नाम है। इसकी प्राचीनता के अनेक प्रमाण पुराणादि ग्रन्थों में मिलते हैं और कहा जाता है कि परम धार्मिक राजा दिवोदास से भगवान् शंकर ने यह नगरी प्राप्त की थी और अपने कुटुम्बियों को ही इस नगरी की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया। इसलिये भगवान शंकर का तो इस नगरी पर पूर्ण आधिपत्य है और भगवती अन्नपूर्णा, जगन्माता दुर्गा, कालभैरव, ढुंढिराज गणेश इस नगरी के प्रधान देवता एवं रक्षक हैं।

धार्मिक दृष्टि से तो इस नगरी का महत्व अपरिमित है ही, परन्तु विद्या की दृष्टि से भी वाराणसी प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध रही है। भारतवर्ष के बड़े-बड़े विद्यापीठों में वाराणसी का महत्व सब से ऊपर रहा है। मिथिला, नालन्द, उज्जयिनी, काश्मीर, कान्यकुब्ज बड़े विद्यापीठ थे, परन्तु इन सब से अधिक मान काशी का था। बड़े-बड़े राजा, विद्वान्, योगी, धार्मिक नेता, आचार्य आदि सब काशी में आकर दीक्षा लेते थे और तब उन का ज्ञान पूर्ण परिपक्व समझा जाता था। सारे शास्त्रों के ज्ञान का भाण्डार काशी समझी जाती थी और यदि कोई विद्वान् शास्त्रार्थ में काशी के पंडितों को परास्त कर लेता था तो उसको दिग्विजय पद प्राप्त हो जाता था। कोई ऐसा शास्त्र नहीं था



बनारस के घाटों का एक दृश्य।

१७—वाराणसी

भारतवर्ष में वाराणसी नगरी बहुत प्राचीन है। आजकल इसको बनारस कहते हैं और संयुक्तप्रान्त के बड़े-बड़े नगरों में इसकी गिनती है। काशी भी इसी का नाम है। इसकी प्राचीनता के अनेक प्रमाण पुराणादि ग्रन्थों में मिलते हैं और कहा जाता है कि परम धार्मिक राजा दिवोदास से भगवान् शंकर ने यह नगरी प्राप्त की थी और अपने कुटुम्बियों को ही इस नगरी की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया। इसलिये भगवान् शंकर का तो इस नगरी पर पूर्ण आधिपत्य है और भगवती अन्नपूर्णा, जगन्माता दुर्गा, कालभैरव, ढुंढिराज गणेश इस नगरी के प्रधान नेता एवं रक्षक हैं।

धार्मिक दृष्टि से तो इस नगरी का महत्व अपरिमित है ही, परन्तु विद्या की दृष्टि से भी वाराणसी प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध रही है। भारतवर्ष के बड़े बड़े विद्यापीठों में वाराणसी का महत्व सब से ऊपर रहा है। मिथिला, नालन्द, उज्जयिनी, काश्मीर, कान्यकुब्ज बड़े विद्यापीठ थे, परन्तु इन सब से अधिक मान काशी का था। बड़े-बड़े राजा, विद्वान्, योगी, धार्मिक नेता, आचार्य आदि सब काशी में आकर दीक्षा लेते थे और तब उन का ज्ञान पूर्ण परिपक्व समझा जाता था। सारे शास्त्रों के [illegible] भाण्डार काशी समझी जाती थी और यदि कोई विद्वा[illegible] में काशी के पंडितों को परास्त कर लेता था तो [illegible] पद प्राप्त हो जाता था। कोई ऐसा शास्त्र नहीं

गत विद्वान् काशी मे वर्तमान न हो और जिसके अध्ययन के लिये दूर-दूर से छात्र काशी मे आकर जमा न होते हों। काशी की यह मर्यादा परम्परा से चली आती है और इसका निर्वाह अब तक होता चला आ रहा है।

यह प्राय. सब को विदित है कि राजा हरिश्चन्द्र की धर्म-परीक्षा काशी में ही हुई थी और यहीं उनको मोक्ष हुआ था। अठारह पुराणों के कर्त्ता भगवान् वेदव्यास भी काशी में ही उत्पन्न हुए थे। योगशास्त्र के प्रवर्त्तक महामुनि पतञ्जलि काशी-वासी थे। विष्णु के अवतार आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि ने काशी में ही अपनी विद्या का वितरण किया था।

बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एव विष्णु के अवतार भगवान् बुद्ध ने काशी में आकर उपदेश किया था और वह स्थान अब सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। जैन-सम्प्रदाय का भी काशी एक धार्मिक केन्द्र है। कबीर सम्प्रदाय का भी काशी आदितीर्थ है।

इस दृष्टि से काशी हिन्दू, बौद्ध, जैनधर्म तथा अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदायों का मुख्य धार्मिक तीर्थ भी है।

सनातनधर्म के शैव, वैष्णव आदि अवातर सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी काशी में आकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। भगवान् शंकर को तत्त्वबोध काशी में ही हुआ था। महाप्रभु वल्लभाचार्य [illegible] काशी में चिरकाल तक निवास किया और अ[illegible] का प्रतिपादन करते रहे। [illegible] भक्तिमार्ग का उपदेश देते रहे।

मुसलमानों की राजसत्ता के समय मुसलमानों की तरफ से हिन्दुओं के मन्दिरों पर काशी में अनेक आक्रमण हुए। विश्वनाथजी के मन्दिर को कई वार तोड़ा गया और वहाँ मसजिद बनायी गयी। परन्तु मुसलमानी राजसत्ता कमजोर होने पर कई धर्मप्राण मनुष्यों के प्रयत्न से मन्दिर का पुनरुद्धार हुआ और विश्वनाथ महादेव की मूर्ति का संस्थापन किया गया। आजकल विश्वनाथजी का जो मन्दिर है वह इन्दौर की महारानी अहिल्यावाई होल्कर का बनवाया हुआ है और सोने का शिखर सिक्खों के राजा महाराजा रणजीतसिंह का बनवाया हुआ है।

प्राय सारे शास्त्रों के पारंगत विद्वान् काशी में हो चुके हैं। व्याकरण के आचार्य पतञ्जलि के अतिरिक्त काशिकावृत्ति के कर्त्ता वामन व जयादित्य काशी में कुछ काल तक निवास करते रहे हैं। महावैयाकरण शेषकृष्ण, सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजीदीक्षित, नागेशभट्ट काशी में ही रहते थे। अलंकार शास्त्र के आचार्य व अनुपम प्रतिभासम्पन्न कविवर जगन्नाथ पंडितराज काशीनिवासी थे और काशी में "गैवी" नामक कुँआ उनके नाम से विशेष रूप से सम्बन्धित है।

वेदान्त शास्त्र के धुरंधर आचार्यों में मधुसूदन सरस्वती, नृसिंहाश्रम स्वामी व काष्ठजिह्वा स्वामी काशीनिवासी थे।

ज्योति शास्त्र के आचार्य कमलाकर, रङ्गनाथ, नीलकण्ठ दैवज्ञ आदि काशीनिवासी थे।

गत विद्वान् काशी मे वर्तमान न हों और जिसके अध्ययन के लिये दूर-दूर से छात्र काशी मे आकर जमा न होते हों। काशी की यह मर्यादा परम्परा से चली आती है और इसका निर्वाह अब तक होता चला आ रहा है।

यह प्राय सब को विदित है कि राजा हरिश्चन्द्र की धर्म-परीक्षा काशी में ही हुई थी और यहीं उनको मोक्ष हुआ था। अठारह पुराणो के कर्त्ता भगवान् वेदव्यास भी काशी में ही उत्पन्न हुए थे। योगशास्त्र के प्रवर्त्तक महामुनि पतञ्जलि काशी-वासी थे। विष्णु के अवतार आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि ने काशी में ही अपनी विद्या का वितरण किया था।

बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एव विष्णु के अवतार भगवान् बुद्ध ने काशी में आकर उपदेश किया था और वह स्थान अब सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। जैन-सम्प्रदाय का भी काशी एक धार्मिक केन्द्र है। कबीर सम्प्रदाय का भी काशी आदितीर्थ है।

इस दृष्टि से काशी हिन्दू, बौद्ध, जैनधर्म तथा अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदायों का मुख्य धार्मिक तीर्थ भी है।

सनातनधर्म के शैव, वैष्णव आदि अवातर सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी काशी मे आकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। भगवान् शकर को तत्वबोध काशी में ही हुआ था। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने आकर काशी में चिरकाल तक निवास किया और अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते रहे। चैतन्य महाप्रभु भी काशी में आकर भक्तिमार्ग का उपदेश देते रहे।

मुसलमानो की राजसत्ता के समय मुसलमानों की तरफ से हिन्दुओं के मन्दिरों पर काशी में अनेक आक्रमण हुए। विश्वनाथजी के मन्दिर को कई बार तोड़ा गया और वहाँ मसजिद बनायी गयी। परन्तु मुसलमानी राजसत्ता कमजोर होने पर कई धर्मप्राण मनुष्यों के प्रयत्न से मन्दिर का पुनरुद्धार हुआ और विश्वनाथ महादेव की मूर्ति का संस्थापन किया गया। आजकल विश्वनाथजी का जो मन्दिर है वह इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होल्कर का बनवाया हुआ है और सोने का शिखर सिक्खों के राजा महाराजा रणजीतसिंह का बनवाया हुआ है।

प्राय सारे शास्त्रों के पारंगत विद्वान् काशी में हो चुके हैं। व्याकरण के आचार्य पतञ्जलि के अतिरिक्त काशिकावृत्ति के कर्त्ता वामन व जयादित्य काशी में कुछ काल तक निवास करते रहे हैं। महावैयाकरण शेषकृष्ण, सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजीदीक्षित, नागेशभट्ट काशी में ही रहते थे। अलंकार शास्त्र के आचार्य व अनुपम प्रतिभासम्पन्न कविवर जगन्नाथ पंडितराज काशीनिवासी थे और काशी में "गैवी" नामक कुँआ उनके नाम से विशेष रूप से सम्बन्धित है।

वेदान्त शास्त्र के धुरंधर आचार्यों में मधुसूदन सरस्वती, नृसिंहाश्रम स्वामी व काष्ठजिह्वा स्वामी काशीनिवासी थे।

ज्योति शास्त्र के आचार्य कमलाकर, रङ्गनाथ, नीलकण्ठ दैवज्ञ आदि काशीनिवासी थे।

गत विद्वान् काशी में वर्तमान न हो और जिसके अध्ययन के लिये दूर-दूर से छात्र काशी में आकर जमा न होते हो। काशी की यह मर्यादा परम्परा से चली आती है और इसका निर्वाह अब तक होता चला आ रहा है।

यह प्राय सब को विदित है कि राजा हरिश्चन्द्र की धर्म-परीक्षा काशी में ही हुई थी और यहीं उनको मोक्ष हुआ था। अठारह पुराणो के कर्त्ता भगवान् वेदव्यास भी काशी में ही उत्पन्न हुए थे। योगशास्त्र के प्रवर्त्तक महामुनि पतञ्जलि काशी वासी थे। विष्णु के अवतार आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि ने काशी में ही अपनी विद्या का वितरण किया था।

बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एव विष्णु के अवतार भगवा[न्] बुद्ध ने काशी मे आकर उपदेश किया था और वह स्थान आ[ज] सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। जैन-सम्प्रदाय का भी काशी ए[क] धार्मिक केन्द्र है। कबीर सम्प्रदाय का भी काशी आदितीर्थ है।

इस दृष्टि से काशी हिन्दू, बौद्ध, जैनधर्म तथा अन्य छो[टे] छोटे सम्प्रदायों का मुख्य धार्मिक तीर्थ भी है।

सनातनधर्म के शैव, वैष्णव आदि अवातर सम्प्रदायो [के] आचार्यों ने भी काशी में आकर अपने सिद्धान्तो का प्रतिपा[दन] किया और अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। भगवान् शंकर [को] तत्वबोध काशी में ही हुआ था। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने आ[कर] काशी में चिरकाल तक निवास किया और अपने सिद्धा[न्तों] का प्रतिपादन करते रहे। चैतन्य महाप्रभु भी काशी में अ[पने] भक्तिमार्ग का उपदेश देते रहे।

स्वामी भास्करानन्द व स्वामी विशुद्धानन्द भी काशी के ही निवासी थे।

आजकल भी काशी अपनी मर्यादा का पूर्ववत् पालन कर रही है। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय जैसा उत्तम विद्यापीठ, जिसकी कृति में महामना मदनमोहन मालवीयजी जैसे तपस्वी देशसेवक ने अपना तन मन-धन अर्पण कर दिया, काशी को ही सुशोभित कर रहा है। गवर्नमेण्ट का भी एक कालेज व एक उत्तम पुस्तकालय 'सरस्वती-भवन' काशी में है। अन्य छोटे-मोटे स्कूलों एव पाठशालाओं की तो कोई गिनती ही नहीं है। देश को राजनीतिक शिक्षा के लिये भी प्रसिद्ध दानवीर विद्याप्रेमी सेठ शिवप्रसाद गुप्त की ओर से खोला हुआ एक बड़ा विद्यालय 'काशीविद्यापीठ' भी काशी मे वर्त्तमान है।

काशी की प्राकृतिक स्थिति भी बहुत उत्तम है। भगवती जाह्नवी के किनारे अर्द्ध-चक्राकार काशी बसी हुई है और नगरी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत सुन्दर मजबूत पत्थर के विशाल घाट बने हुए हैं। पचगगाघाट, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध, केदार एव तुलसीघाट प्रसिद्ध घाट हैं और इनपर स्नानार्थ यात्रियों तथा नगरनिवासियो की भीड़ लगी रहती है। पचगगाघाट पर एक मसजिद बनी हुई है जिसके अन्दर पत्थर की बहुत ऊँची छतियाँ बनी हुई हैं जो बहुत दूर तक दृष्टिगोचर होती हैं। इनको "माधवराव का धरहरा" कहते हैं। राजघाट के पास एक विशाल रेलवे का पुल बना हुआ है जिसको डफरिनब्रिज कहते

धर्मशास्त्र में नारायण, कमलाकर, शंकर, नीलकंठ, दिनकर आदि भट्टवंशीय विद्वान् काशीनिवासी थे।

मीमांसा में मंडन व शम्भुभट्ट, पुराण में नीलकण्ठ चतुर्धर आदि, सांख्य मे विज्ञानभिक्षु, भावेश व गणेश दीक्षित, न्याय मे भवानन्द सिद्धान्तवागीश, विश्वनाथ पचानन, विद्यानिवास भट्टाचार्य, महादेव, दिनकर भारद्वाज, महानैयायिक शंकर मिश्र आदि विद्वान् काशी के ही थे।

आधुनिक काल में भी काशी में चमत्कारी पण्डितों की कमी नहीं रही है। प्राय सारे शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित यहाँ वर्तमान रहे हैं और उनमें से सुधाकर द्विवेदी, गंगाधर शास्त्री, बापूदेव शास्त्री, वेताल विनायक शास्त्री, महादेव शास्त्री घाटे, शिवकुमार शास्त्री, दामोदर शास्त्री, रत्नगोपाल शास्त्री, गोस्वामी दामोदर-लालजी शास्त्री, बाल सरस्वती, वामाचरण भट्टाचार्य, नित्यानन्द पर्वतीय, तात्या शास्त्री इत्यादि गौरवान्वित पंडित मुख्य हो गये हैं।

विद्वानों के अतिरिक्त कई महात्माओं ने भी काशी में रहकर मोक्ष प्राप्त किया है। महात्मा कबीर काशी में पैदा हुए थे और इनका स्थान यहाँ कबीरचौरा के नाम से प्रसिद्ध है। भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी ने अपने जीवन का अधिक भाग काशी में बिताया। तुलसीघाट पर वह कोठरी जहाँ उन्होंने 'विनयपत्रिका' जैसे रत्न को उत्पन्न किया, काशी में अब भी सुरक्षित है और इनकी पवित्र स्मृति की द्योतक है। परमहंस तैलंग स्वामी,

स्वामी भास्करानन्द व स्वामी विशुद्धानन्द भी काशी के ही निवासी थे।

आजकल भी काशी अपनी मर्यादा का पूर्ववत् पालन कर रही है। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय जैसा उत्तम विद्यापीठ, जिसकी कृति में महामना मदनमोहन मालवीयजी जैसे तपस्वी देशसेवक ने अपना तन मन-धन अर्पण कर दिया, काशी को ही सुशोभित कर रहा है। गवर्नमेण्ट का भी एक कालेज व एक उत्तम पुस्तकालय 'सरस्वती-भवन' काशी में है। अन्य छोटे-मोटे स्कूलों एवं पाठशालाओं की तो कोई गिनती ही नहीं है। देश की राजनीतिक शिक्षा के लिये भी प्रसिद्ध दानवीर विद्याप्रेमी सेठ शिवप्रसाद गुप्त की ओर से खोला हुआ एक बड़ा विद्यालय 'काशीविद्यापीठ' भी काशी में वर्त्तमान है।

काशी की प्राकृतिक स्थिति भी बहुत उत्तम है। भगवती जाह्नवी के किनारे अर्द्ध-चक्राकार काशी बसी हुई है और नगरी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत सुन्दर मजबूत पत्थर के विशाल घाट बने हुए हैं। पचगगाघाट, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध, केदार एवं तुल्सीघाट प्रसिद्ध घाट हैं और इनपर स्नानार्थ यात्रियों तथा नगरनिवासियों की भीड़ लगी रहती है। पचगगाघाट पर एक मसजिद बनी हुई है जिसके अन्दर पत्थर की बहुत ऊँची छतरियाँ बनी हुई हैं जो बहुत दूर तक दृष्टिगोचर होती हैं। इसको "माधवराव का धरहरा" कहते हैं। राजघाट के पास एक विशाल रेलवे का पुल बना हुआ है जिसको डफरिनब्रिज कहते

हैं और यह पुल हिन्दुस्तान के रेलवे-पुलों में एक मुख्य पुल है। मानमन्दिरघाट के पास एक विशाल ज्योतिर्वीक्षण-भवन भी बना हुआ है, जिसको "मानमन्दिर" कहते हैं। जयपुर राज्याधिपति महाराजा जयसिंह ने भारतवर्ष में चार स्थानों पर ऐसे मन्दिर बनवाये थे—यथा, काशी, उज्जयिनी, दिल्ली और जयपुर इनकी निर्माणकला बड़ी विलक्षण है। आजकल तो इन मन्दिरों में बने हुए यन्त्रों का पूर्णतया समझना भी दुरूह है।

सारनाथ में सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ एक बड़ भारी स्तूप है जो भी देखने योग्य है।

इन सब के अतिरिक्त काशी व्यापार का भी केन्द्र है। प्राचीन काल में गंगाजी में नावों के द्वारा यहाँ वणिज् का आवागमन होता था और आजकल भी यहाँ रेशमी वस्त्रों का भारी व्यापार होता है।

हिन्दी-साहित्य के अनेक लब्धप्रतिष्ठ कवि एवं लेखकों को भी काशी ने जन्म दिया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को कौन नहीं जानता। उन जैसे अद्वितीय कवि को उत्पन्न करने की सामर्थ्य काशी के सिवा और किसमें हो सकती है। बदरीनारायण चौधरी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामकृष्णवर्मा, लाला भगवानदीन राय बहादुर श्यामसुन्दरदास आदि काशी की गोद में ही पलकर कीर्तिमान् हुए हैं। मुंशी प्रेमचन्द जैसा उपन्यास-लेखक भी काशी का ही पुत्र था।

सच है काशी की महिमा अतुल एव अटल है। क्या आश्चर्य है कि काशी में रहकर मुक्ति प्राप्त हो जाय–नि सन्देह इसके दर्शन-मात्र से संसारतरण हो सकता है। भगवान् शंकर भी तो कैलास जैसे सुरम्य एव स्वर्गस्पर्धी स्थान का परित्याग कर सकुटुम्ब काशी में आ डटे हैं, सो निरर्थक ही नहीं है। इसका रहस्य समझनेवाले समझते ही हैं। काशी !, वाराणसी ! तुझको अनेक प्रणाम !—तू "बनारस" है, तेरे यहाँ 'रस' सदैव 'धना' रहता है।

प्रश्न

१—अपनी भाषा में काशी नगरी का वर्णन करो।

२—काशी में कौन कौन से प्रसिद्ध विद्वान हुए हैं?

३—काशी के प्रसिद्ध विद्वानों के विषय में तुम क्या जानते हो?

१८-भगवान बुद्ध

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व कौशल राज्य की राजधानी कपिलवस्तु मे शाक्यवंशीय महाप्रतापी महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। राजप्रासाद सर्वसुखसम्पन्न होते हुए भी महाराज को सूना दिखलायी पडता था, क्योंकि महाराज के कोई पुत्र न था, उनके विशाल सुख वैभव का कोई उत्तराधिकारी न था। पुत्र लाभ की मनोकामना से महाराज तथा महारानी ने आचार्यों के परामर्श से निराहार रहकर तप किया, जिससे उनका मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हुआ। शुद्धोदन के पुत्रजन्म की कथा बडी रोचक है।

महारानी मायादेवी जब अपने पितृगृह जाने लगीं तब मार्ग मे लुम्बिनी के विशाल उद्यान मे विश्रामार्थ ठहरीं। इसी पवित्र उद्यान में महारानी माया देवी के गर्भ से हमारे चिर विश्रुत भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। मायादेवी अपने अद्वितीय पुत्र के भावी अनुपम विकास की चिन्तना भी न कर पायी थीं कि दैवदुर्विपाक से एक सप्ताह बाद ही उनका देहावसान हो गया। मातृवियोगी लाडले पुत्र के मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये महाराज ने कुछ उठा न रखा। विमाता गोतमी ने तो उसका ऐसा लालन-पालन किया जैसे वह उसका अपना ही पुत्र था। गोतमी सचमुच अपने को भूल-सी गयी थी।

युवराज का राशिनाम भगवान् बुद्ध न था। यह तो उन्हें बडे-बडे कायाकष्ट तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति पर मिला। युव-

राज का जन्म-नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ ने अल्पकाल में ही तत्कालीन युवराजोपयोगी समस्त विद्याएँ सीख लीं। सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी युवराज का मन उनमें लिप्त न था।

एक दिन राजाज्ञा प्राप्त कर अपने सारथी छदक के साथ युवराज राजनगर देखने गये। इससे पहले उन्होंने नगर के विभिन्न दृश्य कभी न देखे थे। उनके लिये यह सब कुतूहल था। अचानक सामने की एक गली से किसी वृद्ध को लाठी के सहारे झुके हुए आते देख युवराज ने आश्चर्यचकित होकर सारथी से पूछा—"छदक, यह कौन जीव है ?"

छदक बोला—"युवराज, यह कोई वृद्ध है जिसकी कमर वृद्धावस्था के कारण झुक गयी है और शरीर जर्जर हो गया है। विशेष अवस्था प्राप्त कर मनुष्य इसी प्रकार झुक जाता है।"

"तो क्या यह अवश्यम्भावी है, टल नहीं सकती ?"—युवराज ने पूछा। "हाँ हम सभी को एक दिन इस अवस्था का सामना करना पड़ेगा। यह सभी के लिये अवश्यम्भावी है, युवराज"—छदक ने गम्भीरता से कहा।

भय से युवराज का विचारचक्र चलने लगा।

"तो क्या मेरी सुन्दरी गोपा इसी प्रकार रूपहीना, कृशगात्रा तथा जर्जरवदना हो जायेगी।"

हृदय के अभ्यन्तर-प्रदेश में कोई जोर देकर बोला—"अवश्य"।

रथ कुछ ही आगे बढ पाया था कि क्रमश एक रोगी तथा एक अरथी को देख युवराज ने बड़े कुतूहल से पूछा—"छदक, और यह क्या है, इसके अंग-अग से रक्त क्यों वह रहा है। कधों पर यह चार व्यक्ति क्या लिये जा रहे हैं तथा उसके पीछे यह रुदन क्यों किया जा रहा है ?"

"युवराज, यह तो शरीर के भोग हैं जो सब शरीरधारियों को भोगने ही पडते हैं" छदक ने वियोगभाव से कहते हुए फिर मृतक को ओर सकेत कर कहा—"और यह अरथी किसी मृतक व्यक्ति की है जिसकी आत्मा इस असार शरीर को छोड कर चली गयी है। अब इसे दहन के लिये ले जा रहे हैं। प्रियजन उसके वियोग में रुदन कर रहे हैं। ससार का दृश्य बड़ा करुण है, युवराज। हम सब भी इसी प्रकार किसी दिन अपने प्रियजनों को रुदन करते हुए छोड़कर चले जायेंगे।"

"यह भी अवश्यम्भावी है, छंदक ?"—युवराज ने पूछा।

छदक बोला—"अवश्य, युवराज! अवश्य। जो जन्मा है, उसे तो मरना ही है।"

चौराहे से राजमहल की ओर रथ मोडते समय किसी सन्यासी को जिसके अग-अग से कान्ति निकल रही थी एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित देखकर रथ ठहराने का सकेत कर युवराज ने पूछा—"छदक, यह तो कोई विचित्र पुरुष देख पड़ता है। इस प्रकार एकान्त स्थान में आँखें बन्द कर बैठने का क्या प्रयोजन है ?"



भगवान बुद्ध



छंदक ने उत्तर दिया—"यह एक सन्यासी है जो इस क्षण-भगुर संसार की विषयवासनाओं को त्याग इन्द्रियदमन तथा गम्भीर चिन्तन द्वारा अखण्ड आनन्द को प्राप्त कर चुका है। इस ससार की कोई भी आकर्षक वस्तु अब उसे वापस नहीं ला सकती। कष्ट और चिन्ताओं से वह मुक्त हो गया है। यही एक मार्ग है, युवराज! जिसके द्वारा मनुष्य सांसारिक व्याधियों से निकलकर परमानन्द में मिल सकता है।"

ससार-चित्रपट के ये चित्र तथा छंदक की बातें युवराज के कोमल हृदय पर अक्षुण्ण-रूप से बैठ गयीं।

\+ + + +

तब से आत्मचिन्तन में इसी प्रकार कितने ही वर्ष बीत गये। उसने एक ही हुकार में माया के सब बन्धन तोड डाले। आधी से ज्यादा रात बीत चुकी थी। युवराज ने गोपा के विलास-भवन में प्रवेश किया। रत्नाभा में एक बडे पर्यंक पर दो मन-मोहीं मुख देखकर युवराज सब कुछ हार गये। इतने दिनों का संचित ज्ञान माया की एक ही झलक में काफ़ूर हो गया। युवराज को इस प्रकार सब कुछ खो बैठे देख हृदय के अन्तरतम प्रान्त से कोई बोला—"हैं, हैं, युवराज! यह सुन्दर मुखाकृतियाँ ही तो तुम्हारे बन्धन और पतन के कारण हैं।

युवराज जागे। उन्हीं पैरों उलटे मुड़े। स्थूल आँखों में से होकर एक चित्रपट हृदय पर प्रतिबिम्बित हुआ। युवराज ने देखा गोपा कह रही है—"मुझे छोड कहाँ जा रहे हो, युवराज!

अभागे राहुल और गोपा को भी ले चलो नाथ ! हा, भँवर में इस प्रकार न छोड़ो, नाविक !

युवराज बलात् उस माया-प्रकोष्ठ से पुखराज की धवल सीढियों द्वारा नीचे उतर आये। आकाश तारों से भरा था। युवराज के ललाट पर भी प्रस्वेदकण दमक रहे थे। शीतल वायु के एक झोंके से युवराज होश मे आये। युवराज और कुछ न बोले। पास के ही एक प्रकोष्ठ-पृष्ठ पर सोये व्यक्ति को जाग्रत कर बोले—"अश्व शीघ्र तैयार करो, छंदक ! मुझे इसी समय किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना होगा। देखो, व्यर्थ कोई शब्द न होने पावे।"

प्रभात होने ही वाला था। युवराज और छन्दक कपिल-वस्तु से दूर महाराज शुद्धोदन की राज्य-सीमा के बाहर जा पहुँचे। अश्व ठहराकर युवराज बोले—"छंदक ! जाओ, भवन लौट जाओ। देखो अब समय नहीं है। लो, यह वस्त्राभूषण भी लेते जाओ।

छन्दक काँप उठा। हृदय नेत्रों द्वारा बहने लगा। उसने युवराज को उषा के धुँधले प्रकाश-में झिलमिले नेत्रों से देखकर कहा—"और आप, युवराज !"

"मैं, हाँ, मैं भी भवन लौटूँगा परन्तु अभी नहीं—सत्यान्वेषण करने के बाद। तुम अभी लौट जाओ। मैं उस वस्तु की खोज में जा रहा हूँ, छन्दक। जिससे जीव को सच्ची शान्ति तथा

सांसारिक दुःखों से मुक्ति मिल सकती है, और उसे प्राप्त कर ही लौटूँगा, ऐसे नहीं।"

यह कहते-कहते युवराज सामने के एक घने कुंज में अदृश्य हो गये।

वैशाली तथा राजगृह के तत्कालीन दर्शन एवं योग के प्रकाण्ड पण्डितों से अध्ययन करने पर भी जब इस राजवंशीय तरुण तपस्वी को शान्ति न मिली तब इसने विहारप्रान्त के एक भयंकर वन में कठोर तपश्चर्या आरम्भ कर दी। शरीर सूख गया। प्राण केवल नेत्रों में ही अटके रहे। युवक तपस्वी की यह दशा देखकर वनवासिनी बालाएँ दूध तथा फलों से युवराज का शरीर सींचने लगीं। एक बार फिर युवराज तपस्वी की आँखों में राजप्रासाद का सुख-वैभव नाचने लगा। पर वे न डिगे। अपने गुरु को वनबालाओं के हाथ से पय:-पान करते देख युवराज के शिष्यों ने उन्हें त्याग दिया। युवराज ने भी यह स्वागत भिक्षा श्रेयस्कर न समझी पर करते ही क्या। शरीर में कोई भी शक्ति तो अवशेष रह नहीं गयी थी। लोकलाज की रक्षा के लिये उन्हें वस्त्र आवश्यक प्रतीत हुआ। वहाँ वस्त्र कहाँ था। किसी प्रकार रेंगते हुए पास के एक श्मशान में जा पहुँचे। संयोगवश किसी मृतक का एक कफन मिल गया। युवराज इसी कफन से अंग ढाँककर भिक्षा माँगने जाया करते थे।

जिसकी खोज में युवराज वर्षों से लगे थे, जिसके लिये विशाल राजप्रासाद तथा सुख-वैभव को ठोकर मार दी थी और जिसके लिये कष्ट सहते-सहते शरीर सुखा दिया था—वह एक दिन अचानक युवराज को एक वटवृक्ष के नीचे मिल गया। युवराज का कपाल नवाभा से दमक उठा। उन्हें शांति मिल गयी। तब से युवराज का नाम बुद्ध तथा जिस वृक्ष के नीचे उन्हें शान्ति मिली थी उस वृक्ष का नाम बौद्धिवृक्ष पडा। गया से थोडी दूर पर यह वृक्ष अब भी वर्तमान है। हजारों यात्री प्रति वर्ष दर्शन करने आते हैं।

भगवान् बुद्ध ने अब पर्य्यटन प्रारम्भ किया। "अहिंसा परमो धर्म" का उपदेश देते हुए वे बडे-बडे नगरों तथा सम्पूर्ण देश में पर्यटन कर आये। उस समय देश में धार्मिक अशान्ति थी, इसलिये कुछ ही काल में भगवान् बुद्ध के सहस्रों अनुयायी हो गये। मगध के महाराज अशोक ने तो दूसरे-दूसरे देशों में भी धर्मप्रचारक मण्डलियाँ भेजकर बौद्ध धर्म का खूब ही प्रचार किया।

महाराज शुद्धोदन ने बुद्ध को निमंत्रण भेजा और स्वयं उन्हें भी यह प्रेरणा हुई कि वे एक बार कपिलवस्तु जायँ। पति-वियोगिनी महासती गोपा की मानसिक तपश्चर्या ने भगवान् बुद्ध का आसन डिगा दिया। वे कपिलवस्तु जा पहुँचे। महाराज शुद्धोदन ने राजवधू गोपा को पति-दर्शन कर आने की बात कही। पर वह न डिगी। उसे विश्वास था कि उसका तप उन्हें अवश्य यहीं खींच लायेगा। हुआ भी ऐसा ही। जब भगवान्

बुद्ध भवन पधारे, गोपा ने अपने लाड़ले लाल राहुल को उनके चरणों पर रखकर अभय वरदान प्राप्त किया। सारा राजपरिवार युवराज का अनुयायी हो गया।

इस प्रकार ४५ वर्ष तक लगातार धर्मप्रचार कर ८० वर्ष की अवस्था में (ईसा से ५३४ वर्ष पूर्व) काशी और पटना के बीच कुशीनगर ग्राम में एक साल वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध ने देह विसर्जन किया। समाधिस्थ होने के पूर्व वे महाराज शुद्धोदन का अन्तिम-सस्कार करने राजप्रासाद में गये। महाराज उनसे धर्मोपदेश सुनते-सुनते परलोक सिधारे। उस समय भगवान् ने अपने अनुयायियों तथा श्रमणकों को चार बातों का उपदेश दिया। वे ये हैं :—

(१) इन्द्रियों का निरोध करने से निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होता है।

(२) आत्मशोधन करते हुए पापों से बचना और पुण्य करना चाहिये।

(३) जल से कीचड़ होता है और जल से ही वह धोया जाता है। इसी तरह मन से पाप होने पर मन के द्वारा ही पाप धोया भी जाता है।

(४) छाया जिस प्रकार मनुष्य का त्याग नहीं करती उसी प्रकार जिसके विचार, वाणी और कर्म पवित्र हैं उसकी सुख-शांति अटल रहती है।

भगवान् बुद्ध जन्मान्तर और मुक्ति को मानते थे औ
अहिंसा, अस्तेय, सूनृत, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—इन पाँ
साधनो को मुक्ति का उपाय बताते थे।

प्रश्न

१—गौतम बुद्ध ने अपना घर क्यों छोड़ा ?
२—उनकी क्या शिक्षा थी ?
३—ससार में उनके धर्म का प्रचार कैसे हुआ ?

१९-सदाचार

स्मृति-ग्रन्थों में यद्यपि आचार शब्द का प्रयोग विशेषतय
खान-पान की शुद्धि एवं वल्कल आदि के धारण में किया गया है
परन्तु आजकल यह शब्द परम व्यापक हो गया है। शील औ
सदाचार में अब विशेष भेद नहीं है। शील की व्याख्या कर
हुए हारीत—मृदुता, मैत्रता, प्रियवादित्व, कृतज्ञता, शरण्यता
कारुण्य, प्रशान्ति आदि को शील का स्वरूप मानते हैं। गोविन्द
राजराग और द्वेष के परित्याग को ही शील मानते हैं। सदाचा
में शील के इन गुणो की वृद्धि के साथ शारीरिक एव मानसि
शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

जिस रहन-सहन और व्यवहार के करने से एक व्यक्ति
मानव-समाज में सज्जन के शब्द से अलंकृत होता है, संक्षि

रूप में उसका नाम ही सदाचार है। जो सदाचारी होता है मानवजीवन में उसकी सब तरह से उन्नति होती है और वह सब लोगों का पूजनीय एवं श्रद्धा का पात्र बन जाता है। दुराचारी पुरुषों से सब घृणा करते हैं और न कोई उनका विश्वास करता है।

सदाचारी पुरुष अपने कामों से किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता और जहाँ तक हो सके वहाँ तक वह सब की सहायता करता है। जिस जाति एव देश में ऐसे पुरुषों की अधिकता होती है वे जातियाँ एव देश जगत में समुन्नत और सभ्य के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। विशेष ज्ञान अथवा प्रचुर मात्रा में धन के कमाने से ही एक मनुष्य सदाचारी नहीं कहला सकता। सदाचारी वह होता है जो अपनी उत्कृष्ट विद्या और अतुलित धन का सदुपयोग करता है। दुराचारियों की प्रत्येक शक्ति दूसरों को सताने में काम आती है और अन्त में वे स्वय भी उससे विनष्ट हो जाते हैं। परन्तु सदाचारी अपनी सामर्थ्य को सदा भले कामों में ही लगाते हैं और अपनी सुख एव शान्ति के साथ दूसरों को भी आनन्द देते हैं।

आजकल शिक्षा का विशेष प्रचार होने पर भी जो अभी मानव-समाज में विशृंखलता है, उसका प्रधान कारण यही है कि काम के समय सब अपनी अच्छी शिक्षाओं को भूल जाते हैं। परन्तु सदाचारी ऐसा नहीं करते। वे कभी भी ऐसा काम नहीं करते जिससे उनके नाम या उनके कुल पर किसी तरह का कलक लग सके और वे काम के समय ही

अपने सद्‌गुणों का परिचय दिया करते हैं। वे अपने कामों को नाम कमाने के लिये नहीं करते, परन्तु यह उनका एक स्वाभाविक गुण होता है कि वे परोपकारी एव सर्वजन प्रिय होते हैं।

अपने कर्तव्य को समझकर बुरी सगति एव बुरे व्यसनों को छोडकर प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो सकता है। यह मनुष्य की कमज़ोरी है कि वह यह समझता है कि बुरी वातों का सहारा पाये बिना अथवा झूठ की सहायता लिये बिना उसका काम सिद्ध नहीं होगा। जो सत्यव्यवहार मे दृढ भक्ति रखते हैं उनके कामों को प्रकृति अपने आप सिद्ध कर देती है। सदाचारी के विनय से सव प्रसन्न रहते हैं और शत्रु भी उसके मित्र बन जाते हैं। आवश्यकता यही है कि हम सदाचारी बनने का प्रयत्न करे और अपने कर्तव्य एव अकर्तव्य को समझे।

आह्निक

सदाचार-पालन की तरह आह्निक कर्म भी जीवन में एक परम आवश्यक अग है। जीवन दैनिक घटनाओं के आधार पर ही उन्नत अथवा अवनत होता है। जो पुरुष अपने आह्निक कर्मों पर ध्यान नहीं देते, वे अन्त में बहुत पछताते हैं। हमारे तत्ववेत्ता पूर्वजो ने हमारे आह्निक कर्मों की ऐसी व्यवस्था की है कि प्रतिदिन उनका पालन करने के वाद प्रतिक्षण जटिल होते हुए जीवन की यात्रा में फिर विशेप असुविधा नहीं होती। आज-कल जो हमारे समाज में चित्त की अशान्ति, रोग एव तामसिक

विचारो का परम प्राबल्य हो रहा है, और मूर्खता का साम्राज्य प्राय प्रतिदिन बढता जा रहा है उसमें प्रधान हेतु यही है कि हम अपने आह्निक कर्मों की भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं।

आह्निक कर्मों का पूर्ण विवरण अत्यन्त विस्तृत है, पर साधारणतया इतना समझ लेना ही पर्याप्त होगा कि ब्राह्म मुहूर्त में उठना, स्नान-संध्या, हवन, स्वाध्याय, बलिवैश्वदेव, अतिथि-सत्कार आदि दैनिक कर्मों की उपेक्षा से हमारी जितनी क्षति हो रही है, वह किसी भी अन्य कार्य से पूर्ण नहीं हो सकती।

ब्राह्म मुहूर्त में उठने के लाभों पर विशेष लिखना अनावश्यक है। उस समय की वायु के सेवन से जो स्फूर्ति आती है, शान्त मस्तिष्क में जिन विचारों का अभ्युदय होता है, उससे शरीर की जो शुद्धि होती है और जीवन के जिस अमूल्य समय की, जो तन्द्रा में व्यर्थ नष्ट होता, प्राप्ति होती है—यह संसार में अद्वितीय है। इसी तरह स्नान-संध्या के द्वारा प्राणायामादि से जिस आयु की वृद्धि होती है, वह लाख तरह के अन्य सिमेंट, चाय, सिनेमा और साबुन या पाउडरों के उपयोग से एक क्षण के लिये भी नहीं हो सकती। प्रतिक्षण दौड़ता हुआ आजकल का जीवन एक क्षण के लिये भी समाधि-सुख का अनुभव न करने के कारण ही परम विचलित हो रहा है।

इसी तरह निरर्थक साहित्य को पढने की अपेक्षा

यदि प्रतिदिन शास्त्रों का स्वाध्याय होता तो जीवन मे छिछलापन नहीं आता।

यह अतिथिसत्कार की उपेक्षा आदि का ही कुपरिणाम है कि हम में जातीयता, राष्ट्रीयता अथवा अन्तर-राष्ट्रीयता का अभाव हो रहा है। यदि हम प्रत्येक भाई का सत्कार करते तो हम में भ्रातृभाव की वृद्धि होती । इत्यादि एक-दो नहीं, हजारों ऐसे गुण हैं जिनकी रक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन स्मृति-ग्रंथों का अध्ययन कर अपने कर्तव्य कर्म का ज्ञान प्राप्त करे और अपने जीवन को सुखी बनावें ।

देवार्चन

सदाचार तथा आह्निक कर्म के साथ तीसरा हमारा यह कर्तव्य हैं कि हम अपना कुछ समय देवार्चन में भी अवश्य व्यतीत किया करे। देवार्चन हमारा प्रधान कर्तव्य है। मनुष्य का जहाँ यह कर्तव्य है कि वह अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखे और अपने दृढ़ अध्यवसाय एव सत्कर्मों से अपनी उन्नति करे, वहाँ उसके साथ ही यह भी उसका धर्म है कि वह इस बात को कभी न भूले कि उसकी शक्तियो को विकसित करने मे उसके परम पिता का ही मुख्य हाथ है। भगवत्कृपा का ही यह फल है कि हम इस सुन्दर सृष्टि में इस अनुपम सौन्दर्य का अनुभव कर रहे हैं। वह प्रभु यद्यपि हमारी पूजा की अपेक्षा नहीं रखता, पर

हमारा कर्तव्य है कि हम अपने उस विधाता से अपने सम्बन्ध को विच्छिन्न न करें। हमारा उससे जितना ही अधिक सम्बन्ध होगा, हमारा उतना ही अधिक कल्याण है। यह निश्चित है कि वह सर्वव्यापक है और हमारा उससे एक अनवच्छिन्न सम्बन्ध है, पर स्मरण, ध्यान एवं अर्चन आदि के विना वह सम्बन्ध स्फुट नहीं होता। विकास के लिये किसी-न-किसी क्रिया की आवश्यकता अवश्य है और यह क्रिया देवार्चन में अत्यन्त प्राचीन काल से विशेष सफल और आनन्दमय प्रकटित होती रही है। देवार्चन में जिस प्रेम, श्रद्धा, संलग्नता और शान्ति का अनुभव होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। विभिन्न देवों के उपासक बनकर परस्पर कलह करना देवार्चन नहीं है। सब देवों में उस एक प्रभु की ज्योति को मानकर और उसके ही विभिन्न स्वरूपों को देवरूप समझकर भगवान् शंकर, विष्णु, माता भगवती आदि की जो पूजा करते हैं, वह सब से अधिक सुन्दर पूजा है। पूजा में नाना उपहारों की अपेक्षा भाव और भक्ति प्रधान हैं।

देवार्चन से हृदय एवं मस्तिष्क में जो एक उल्लास और विश्वास उत्पन्न होता है वह विद्या, बुद्धि और शक्ति के उपार्जन में परम सहायक होता है। भारत में इस देवार्चन के प्रताप से जिन मधुर स्तोत्रों की रचना हुई है, वह जगत के साहित्य में एक अनुपम साहित्य है। इस अर्चना में मनुष्य का अपने इष्ट देव से अविकल सम्बन्ध होजाता है और फिर वे परस्पर संभाषण के अधिकारी हो जाते हैं।

छात्रों को चाहिये कि वे इन बातों पर अपने गुरुजनों से पूर्ण शिक्षा को प्राप्त अवश्य करें और व्यवहार रूप में इनका पालन कर इनके आनन्द का अनुभव करें। पठन की अपेक्षा यह विषय विशेषतया आचरण के द्वारा अनुभव करने योग्य है।

प्राचीन भारत की एक झलक

अदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।

बात आजकल की नहीं, सौ दो सौ की भी नहीं। उसे हुए हजारों वर्ष बीत गये। उस समय राजा रघु का राज्य था। वे ससागरा पृथ्वी के पति थे। साकेत नगरी (प्राचीन अयोध्या) उनकी राजधानी थी। सत्पात्रों को दे डालने ही के लिये वे धनो पार्ज्जन करते थे, प्रजा के काम में लगा देने ही के लिए वे कर लेते थे, निर्बलों को प्रबलों के उत्पीडन से बचाने के लिए ही वे धनुर्बाण धारण करते थे। विद्वानों का प्यार वे अपने प्राणों से भी अधिक करते थे, उन्हें वे देवता समझते थे, उनके पैर तक अपने हाथों से धोते थे। यह मजाल न थी कि अरण्यवासी विद्वानों के लगाये हुए छोटे से पौधे की एक टहनी भी कोई तोड़ ले–उनके खेतों से साँवाँ की एक बाल भी कोई चुरा ले जाय।

बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी विद्वान् बड़ी बड़ी बस्तियों में, उस समय, न रहते थे। बस्ती के कुछ दूर, जंगल में, वे अपनी पर्ण शालायें बनाते थे। साँवाँ, कोदो और कँगनी की वे खेती करते थे। गायें भी वे पालते थे। उनके पास सैकड़ों नहीं, हजारों विद्यार्थी रहते थे। वे उन्हें विद्या का भी दान देते थे और भोजन-वस्त्र का भी। अन्याय, उत्पीडन और चौर-कर्म्म का कहीं नाम न था। यज्ञ के पावन धूम से आसपास का प्रदेश सुरभित रहता था। वेद-घोष से दिशायें गुञ्जायमान रहती थीं। आचार्यों की आज्ञायें पालन करने में चक्रवर्ती राजा तक अपनी कृतार्थता मानते थे। ऐसे समय के भारत की एक झलक देखिए।

राजा रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति, विश्वजित् नामक यज्ञ में, दे डाली है। पास कुछ भी नहीं रक्खा। पानी पीने के लिए पीतल का लोटा भी नहीं रह गया। रह क्या गया है? मिट्टी ही का सकोरा, मिट्टी ही की हाँड़ी, मिट्टी ही की थाली। इस प्रकार सर्वस्व-दान देकर आप रिक्त-हस्त हो गये हैं।

इसी समय, वरतन्तु नाम के एक बड़े तपस्वी और बड़े विद्वान् महात्मा राजा रघु के राज में तपश्चर्या और अध्यापन का काम करते हैं। आश्रम उनका जङ्गल में है। खेत पात भी उनके वहीं हैं। अनेक ब्रह्मचारी आपके आश्रम में रहते और अध्ययन करते हैं। वरतन्तु ऋषि की विद्वत्ता का यह हाल है कि वे चौदहों विद्याओं के निधान हैं। तप उनका इतना बढ़ा चढ़ा है कि उनके डर से इन्द्र का आसन डिग रहा है। कहीं इतना घोर तप करके ये मेरा इन्द्रत्व तो नहीं छीन लेना चाहते। इस डर से सुरेन्द्र शर्म्मा

को अप्सराओं की शरण लेनी पड़ी। पर वरतन्तु जी के सामने उनकी एक भी न चली। वे अपना सा मुँह लेकर लौट गईं इन्द्र का वह भय सर्वथा निर्मूल था। इन्द्रासन पाने की इच्छा अल्प-पुण्यात्माओं ही को हुआ करती है। वरतन्तु जी ऐसे नहीं।

वरतन्तु के आश्रम मे कौत्स नाम का एक विद्यार्थी है। जब उसका अध्ययन समाप्त हो गया और वह पूर्ण विद्वान् होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य हुआ तब वरतन्तु ने उसे घर जाने की आज्ञा दी। कौत्स ने भक्तिभाव के उन्मेष मे आकर प्रार्थना की—

"आचार्य्य! मुझसे कुछ गुरु-दक्षिणा लीजिए। आपकी कृपा से मैं मूर्ख से पंडित हो गया। अतएव मेरी हार्दिक इच्छा है कि मै पत्र-पुष्परूपी थोडी सी पूजा आपकी करूँ।"

वरतन्तु—"वत्स! तुमने मेरे आश्रम मे इतने दिन तक रह कर मेरी जो सेवा-शुश्रूषा की है उसी को मैं सबसे बड़ी गुरु-दक्षिणा समझता हूँ। वही क्या कम है?"

कौत्स—"नहीं आचार्य्य! कुछ आज्ञा तो अवश्य ही दीजिए, कृपा कीजिए। मेरा जी नहीं मानता।"

वरतन्तु—"कौत्स! दक्षिणा की अपेक्षा शिष्य की भक्ति मुझे विशेष सन्तोषदायिनी है। उसके मुकाबले में दक्षिणा कोई चीज नहीं। तुमसे मैं कुछ नहीं चाहता।"

कौत्स—"महाराज! आपको मेरा अनुरोध मानना ही

डेगा। मुझे अपना सेवक समझ कर कुछ मुँह से जरूर कहिए।"

शिष्य की इस हठ को देखकर आचार्य्य का महासागर सदृश शान्त चित्त भी क्षुब्ध हो उठा—

उन्हें रोष हो आया। उन्हें कौत्स की गरीबी का कुछ भी खयाल न रहा। वे बोले—"अच्छी बात है। तू गुरु-दक्षिणा दिये बिना जो घर नहीं जाना चाहता तो अब देकर ही जाना। मैंने तुझे चौदह विद्यायें पढाई हैं। अतएव एक एक विद्या के बदले एक एक करोड़ रुपया मुझे ला दे।"

कौत्स इस आज्ञा को सुनकर जरा भी नहीं घबराया। उसने —"जो आज्ञा"—कहकर गुरु को प्रणाम किया और वहाँ से चल दिया। जिस ब्राह्मण-कुमार के पास कौपीन, कमण्डलु और पलाशदण्ड के सिवा और कुछ नहीं था उसने चौदह करोड़ रुपये अपने विद्या-गुरु को देने की दृढ प्रतिज्ञा की।

जरा इस घटना पर ध्यान दीजिए। वरतन्तु ने कौत्स को बरसों पढाया—कौन जाने बीस वर्ष पढाया, या पचीस वर्ष या इससे भी अधिक—पढाया ही नहीं, अपने घर रक्खा, भोजन वस्त्र भी दिया और बीमार होने पर सुताधिक स्नेह से उसकी रक्षा भी की और इसके बदले में आपने पाया क्या? केवल शिष्य-भक्ति। उसीको आपने फीस समझा, उसीको बोर्डिंग का खर्च, उसी को सब कुछ। यह तो हुआ आचार्य्य का हाल। अब शिष्य को देखिए। वह भक्ति-दान से सन्तुष्ट नहीं। वह यथा-शक्ति कुछ और भी देना चाहता है। बिना दक्षिणा के आचार्य्य के आश्रम से घर जाने के लिए उसका पैर

धनो से बढकर समझा। चक्रवर्ती राजा होने पर भी रघु को अभ्यागत के आदरातिथ्य की क्रिया अच्छी तरह मालूम थी। अपने इस क्रिया ज्ञान का यथेष्ट उपयोग करके रघु ने कौत्स को प्रसन्न किया। जब वह स्वस्थ होकर आसन पर बैठ गया तब रघु ने नम्रतापूर्वक भृकुटी या हाथ के इशारे से नहीं, किन्तु वाणी द्वारा, कुशल-समाचार पूछना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, राजा ने हाथ भी जोडने की जरूरत समझी। विद्वान् और तपस्वी की महिमा तो देखिए।

हे कुशाग्रबुद्धे! कहिए, आपके गुरु तो मजे में हैं? आपके विद्या-गुरु महर्षि वरतन्तु की तपस्या का क्या हाल है? उनके तपश्चरण के बाधक कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं होता।

आपके आश्रम के पेड-पोधे तो हरे भरे हैं? सूखे तो नहीं? आँधी और तूफान आदि से उन्हें हानि तो नहीं पहुँची?

आपके तीर्थ-जलों की क्या हालत है? उनमें कोई खराबी तो नहीं? वे सूख तो नहीं गये? पशु उन्हे गँदला तो नहीं करते? इन तीर्थ-जलों को—इन तडागों और बावलियों को—मैं आपके बडे काम का समझता हूं। इन्हीं का जल आपके स्नानादि के नित्य काम आता है। पितरों का तर्पण भी आप इसी से करते हैं। इन्हीं के किनारे रेत पर आप अपने खेतों की उपज का षष्ठाश, राजा के लिए, रख छोड़ते हैं। यह वह समय था जब न कोई तहसीलदार था, न रेविन्यू मनीआर्डर थे, न लगान वसूल करने के

लिए कोई क़ानून था। न किसी पर नालिशें होती थीं, न बेदख़ली थी, न कुर्की। राज-कर, उपज के रूप में, दिया जाता था—सो भी छ मन पीछे एक मन। झूठ, धोखेबाजी और चौरकर्म्म का कहीं नाम न था। जिसे जितना कर देना होता था वह उतना किसी पास के कुएँ, तालाब या बावली के किनारे चुपचाप रख देता था। समय पर राज-कर्म्मचारी उसे उठा ले जाते थे। भारत का यह प्राचीन दृश्य किसी सहृदय के कण्ठ को गद्‌गद् और नेत्रों को साश्रु न करेगा?

इन ऋषियों के उदर-निर्वाह की साधन-सामग्री को तो देखिए। वे खाते क्या थे—मका, कँगनी और साँवाँ! पर विद्वत्ता उनकी ऐसी थी कि साकेत के चक्रवर्ती राजा उनके पैर अपने हाथ से धोते थे। उनकी तपस्या का यह हाल था कि सुरराज इन्द्र भी उसे देख कर कम्पित होते थे!!! सादा जीवन और उच्च विचार का ऐसा उत्कृष्ट नमूना क्या कभी किसी देश की किसी जाति में और कहीं पाया जा सकता है?

आप हमारे परम पूज्य हैं। हाँ, भला यह तो कहिए, कि आपने जो मुझ पर यह कृपा की है वह आपने अपने ही मन से की है या गुरु की आज्ञा से, वन से इतनी दूर मेरे पास आने का कारण क्या?

इस विस्तृत कुशल-प्रश्नावली के समाप्त होने पर कौत्स ने कहा—

"राजन्! हमारे आश्रम में सब प्रकार कुशल है। हमारे तपश्चरण में कोई विघ्न नहीं, आश्रम-पादप खूब अच्छी दशा

मे हैं, जल की कमी नहीं, अन्न काफी है, पश्वादिको का कोई उपद्रव नहीं । आपके राजा होते, भला, हम लोगो को कभी स्वप्न मे भी कष्ट हो सकता है। सूर्य्य के मध्य आकाश मे स्थित रहते, मजाल है जो रात्रिसम्भूत अन्धकार अपना मुँह दिखाने का हौसला करे ? रहा मेरे आने का कारण, सो मैं गुरु के लिए आप से कुछ माँगने आया था । परन्तु मैं देर से आया। आपसे माँगने का समय जाता रहा। आपके ये मिट्टी के पात्र इसके प्रमाण हैं। आप प्रसन्न रहें। अब मैं आप से इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहता । मैं तो मनुष्य हूँ। गुरु की कृपा से चार अक्षर मैंने पढे भी हैं। अतएव ऐसे समय मे याचना मुझे मुनासिब नहीं । सारे संसार को जल-वृष्टि से आप्लावित करके शरत्काल को प्राप्त होने वाले रिक्त मेघों को पतंग-योनि में उत्पन्न चातक भी, अपनी याचनाओं से तंग नहीं करते।"

राजा ने उत्तर दिया—"अच्छा, बतलाइए तो, कौनसी चीज आप अपने गुरु को देना चाहते हैं और कितनी देना चाहते हैं ?"

इस पर कौत्स ने सब हाल कहा। सुनकर राजा बोला—"कुछ चिन्ता नहीं। आप दो तीन दिन मेरी अग्निहोत्रशाला मे ठहरिये। मैं आपकी अर्थ-सिद्धि के लिये चेष्टा करूँगा। मेरे पास से आपका विफल-मनोरथ जाना मेरे लिए बड़े कलंक की बात होगी। यह मैं नहीं चाहता—यह मुझे असह्य होगा।"

रघु के खजाने में कौड़ी न थी। चौदह करोड़ रुपया कहाँ से आवे ? राजा धर्मसकट में पडा। अन्त में उसने कुबेर पर चढाई करके उतना द्रव्य प्राप्त करने का निश्चय किया। उसने अपना शस्त्रास्त्र-पूर्ण रथ सजाया। प्रात काल यात्रा करने के के इरादे से रात को वह उसी रथ पर सोया। पर उसे प्रस्थान करने की जरूरत नहीं पड़ी। रात ही को उसका खजाना अशर्फियों से अकस्मात् भर गया। अतएव उसने वह सब धन कौत्स के सामने लाकर हाजिर कर दिया। वह चौदह करोड से कहीं अधिक था। सवाल था सिर्फ चौदह करोड के लिए, परन्तु उतना ही देना रघु के लिए कोई विशेष उदारता की बात न थी। इससे राजा वह सारा का सारा धन कौत्स को देने लगा। परन्तु वह मतलब से अधिक क्यों लेता ! उसने गिन-कर चौदह करोड ले लिया। बाकी सब वहीं पडा रहा। अब बतलाइए उन दोनों में से किसे अधिक प्रशसा का पात्र समझना चाहिए—दाता रघु को या याचक कौत्स को ? रघु की राजधानी साकेत नगरी के निवासियों ने तो उन दोनों को बराबर एक ही सा अभिनन्दनीय समझा—

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनि स्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥

प्रश्न

१ कौत्स और वरतन्तु के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२ रघु ने कौत्स को धन क्यों दिया ?

३ इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?
